जैसी करनी वैसी भरनी

भारतीय साहित्य निधि

जैसी करनी वैसी भरनी

लेखक

एम. एस. पुट्टण्णा

अनुवाद

एस. एम. रामचंद्र स्वामी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आवरण : अमिय भट्टाचार्य की पेंटिंग पर आधारित।

ISBN 81-237-1205-7

पहला संस्करण : 1995 (शक 1916)
पहली आवृत्ति : 1997 (शक 1919)

Original Title : Madiddanno Maharaya (*Kannad*)
Translation : Jaisi Karanee Vaisi Bharanee (*Hindi*)

रु. 28.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

भूमिका

पुट्टण्णा का जन्म 1854 में मैसूर में हुआ। कन्नड़ की श्रीवृद्धि के लिए स्वयं को समर्पित करने वाले महापुरुषों में वे अग्रणीं थे। वे मद्रास विश्वविद्यालय के स्नातक थे और आजीवन अध्यापक, वक्ता, राजस्व अधिकारी, वकील तथा कन्नड़ के पुनरुज्जीवन-काल के लेखक के रूप में अविरत परिश्रम करते रहे। अन्य क्षेत्रों में व्यस्त रहते हुए भी पुट्टण्णा ने सारस्वत सेवा करना बंद नहीं किया। साथ ही वे विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षण मंडलियों में परीक्षक, पाठ्य-पुस्तक समिति और भाषा के साधु-असाधु रूपों की चर्चा करने वाली समिति में भी सदस्य के रूप में सेवा करते रहे। पुट्टण्णा कन्नड़ साहित्य परिषद् के संस्थापक सदस्यों में से भी थे। कुछ समय तक परिषद् के मंत्री का भी कार्यभार संभालते रहे। सार्वजनिक कार्यकलापों में वे विशेष रुचि दिखाते थे। अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, उर्दू, हिंदी और तेलुगु भाषाओं में उनका प्रवेश था पर बोलचाल और लिखित कन्नड़ में देशी शैली के वे पक्षपाती थे। पहले से प्रचलित अन्य भाषा शब्दों के निष्कासन के पक्षधर वे कभी नहीं रहे।

पहली पत्नी के साथ पुट्टण्णा का वैवाहिक जीवन सुगम नहीं रहा। पत्नी के शील पर जब संदेह होने लगा तब उनका दाम्पत्य सूत्र टूट गया। फिर अपने पसंद की लड़की से शादी करके उसे पढ़ाया, लिखाया। इस पत्नी से इनके तीन बेटे और तीन बेटियां हुईं।

वृत्ति-जीवन में भी पुट्टण्णा बहुत ही परिशुद्ध थे। अमलदार के पद के निर्वाह में वे महीने में दस दिन दौरे पर रहते थे। कभी वे मूल्य चुकाये बिना ग्रामवासियों से दूध, फल आदि नहीं लेते थे। बड़े हाकिमों को माल भेजना पड़े, तो बिल भेजकर उनसे पैसा वसूल करने वाले थे। इस निष्ठुर प्रवृत्ति के कारण पुट्टण्णा पदोन्नति के कई न्यायोचित मौकों से वंचित रहे। सन् 1930 में उनका स्वर्गवास हुआ। अंतिम क्षण तक पुट्टण्णा साहित्य सृजन और सार्वजनिक सेवा में तत्पर रहे।

X X X

अपने रचना-काल के प्रारंभ में ही पुट्टण्णा ने गद्य की संभावनाओं को समझ लिया था। उन्हें पहले से दृढ़ विश्वास था कि कन्नड़ उपन्यास सामाजिक हो या ऐतिहासिक, उसके लिए यहीं विपुल काव्य-सामग्री उपलब्ध है। ध्यान देने की बात है कि तब तक बी. वेंकटाचार

और गलगनाथ ने मौलिक रचना और अनुवाद के द्वारा उपन्यास प्रस्तुत कर कन्नड़ उपन्यासों का मार्ग प्रशस्त कर लिया था। यद्यपि वेंकटाचार की भाषा संस्कृतनिष्ठ थी, फिर भी कन्नड़ गद्यविद्या में रम्यता लाने में यह समर्थ हुई। इस दृष्टि से गळगनाथ की शैली सरल थी और इतिहास के वीरों के साहसों को उजागर करने के लिए अत्यंत उपयुक्त थी। बी. वेंकटाचार और गळगनाथ के उपन्यासों ने कन्नड़ पाठकगण को नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। उस समय पुट्टण्णा ने कन्नड़ उपन्यास को एक जानदार आधार प्रदान किया और प्रयोग के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

पुट्टण्णा कन्नड़ के पुनरुज्जीवन काल के रचनाकार हैं। उस जमाने में साहित्यकारों पर राजा का वरदहस्त रहता था। उन दिनों स्वतंत्र कृतियों के साथ-साथ भाषांतर, रूपांतर और प्राचीन काव्यों का प्रकाशन भी देखने को मिलता था। राज्य के विकास में दत्तचित्त दीवानों का प्रोत्साहन व अंग्रेजी शिक्षण के प्रभाव से कन्नड़ साहित्य का श्रीवर्धन द्रुतगति से हो रहा था।

भारतीय जनजीवन पर अंग्रेजी शासन का गहरा प्रभाव पड़ा। परंपरा में परिवर्तन दिखने लगा। राजनीति में राजसत्ता से प्रजासत्ता के लक्षण नजर आये; वर्णाश्रम के बंधन में ढिलाई, शिक्षण व नियुक्तियों में नयी नीति, सामाजिक क्षेत्र में शिशु विवाह पर रोक और स्त्री शिक्षण के लिए प्रोत्साहन व साहित्य क्षेत्र में पद्य से गद्य की ओर झुकाव तथा गंभीर से ललित साहित्य में रुचि आदि परिलक्षित हुए। पुरानापन लुप्त हो रहा था और नयापन सिर उठा रहा था।

सांस्कृतिक भिन्नता से उपजे कई अंग्रेजी प्रभावों को पुट्टण्णा और उनके समकालीन साहित्यकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि और रुचि के रूप में ग्रहण किया। देशी को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने परंपरा का त्याग नहीं किया, नव कांतिमान शैली को अपनाया। मातृभाषा और बोलचाल की भाषा का प्रयोग बढ़ने लगा। इनकी संस्कृति जीवन मे दैव की महत्ता को स्वीकार कर चलने वाली थी। अंग्रेजी साहित्य के परिचय से मानो इनके लिए एक नया द्वार खुल गया। देश की परतंत्रता से भी लोग आतंकित थे। उनके जीवन मूल्य अचल थे। ये उत्तरदायित्व से घबरानेवाले जीव नहीं थे।

पुट्टण्णा के साहित्यिक जीवन का शुभारंभ अनुवाद व पाठ्य-रचना से हुआ था। उनके गद्यलेखन के विविध मुख थे। उनका उपन्यास व कहानी साहित्य, जीवनियां, रूपांतर-भाषांतर, शोध साहित्य, पाठ्यकृतियां, पत्रकारिता के लेख आदि इसके लिए साक्षी हैं।

तब के उपन्यास कन्नड़ भाषाभाषियों के लिए अपरिचित एक भिन्न समाज को अंकित करनेवाले अनूदित ग्रंथ थे। उस समय पुट्टण्णा ने अपने उपन्यासों में कन्नड़ जनता के आचार-विचार, प्रकृति-स्वभाव, आशा-आकांक्षाओं तथा संकल्प-विकल्पों का चित्रण सुरम्य कन्नड़ शैली में किया। *माडिद्दुण्णो महाराया* (1915) *मुसुकु तेगेये मायांगने* (1928) और *अवरिल्लदूटा* (1959) आदि उपन्यास पुट्टण्णा की साहित्यिक साधना के अनर्घ्य रत्न हैं।

तत्कालीन सामाजिक जीवन और जनपद के विचारों को चकित कर देने वाला चित्रण यहां पाया जाता है। देशकाल का अंकन उसकी सारी विसंगतियों और संघर्षों के साथ किया गया है। पुट्टण्णा के उपन्यासों से तत्कालीन संस्कृति के मूल्याधारों को आसानी से समझा जा सकता है। मैसूर राज दरबार का जो चित्रण उनके उपन्यासों में प्रस्तुत है वह अन्य किसी भी कृति में प्राप्त नहीं है। असली राजभक्तों से लेकर समयोपासकों तक के कई तरह के पात्र यहां देखने को मिलते हैं। काव्य व कला को आश्रय देते वक्त तथा दानधर्म में निरत कृष्णराज ओडेयर तृतीय का भव्य और उज्ज्वल चित्रण प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार दौलत खोकर राजकीय समर में हारे कई प्रकार के त्रस्त राजाओं का भी यथार्थ चित्रण पुट्टण्णा ने अंकित किया है। कृष्णराज ओडेयर तृतीय में लेखक को अपार श्रद्धा-भक्ति थी। 'राजा प्रत्यक्ष देवता' में पुट्टण्णा पूरा विश्वास रखते थे।

पुराणेतिहास, काव्य, शास्त्रग्रंथ तथा अन्य अनेक स्रोतों से चुनकर डेढ़ सौ कहानियों का संकलन *नीतिचिंतामणी* (1884) तैयार किया गया। यह संकलन अपने नामानुकूल गुण भी रखता है। एक शताब्दी से भी अधिक समय से यह संकलन बच्चों का मन बहलाकर उन्हें सीख देता आ रहा है। अपने आप में यह रचना अपूर्व है। बाल साहित्य के रचनाकार की उपाधि पुट्टण्णा को इसी कृति से मिली है। अभी वे इसी उपाधि से जाने जाते हैं। *पुट्टण्णा हेलिद कथगलु* (1981) संकलन तीन भागों में प्रकाशित है। इन संकलनों से लगता है कि बाल मन को बिना बोझिल किये कहानियों के द्वारा क्लिष्ट विचारों को कहना उनका शौक था।

"पेटेमातेनज्जी" (1927) एक मनोरंजक कहानी है जो साधारणतया लोक साहित्य में देखने को मिलती है। 'कलावती परिणय' जैसे रूढकाव्य की कहानी से इसकी तुलना की जा सकती है। शैक्सपीयर के नाटक 'आल्स वैल दैट एंड्स वैल' में भी हम समानता देख सकते हैं। नारी जीवन पुट्टण्णा की प्रिय काव्यवस्तु है। इस कथानक में नायिका चेलुवाजी अपने पातिव्रत्य की महिमा से हर संकट का सामना करती है। इस कथानक में चेलुवाजी के इस पात्र से पुट्टण्णा बहुत ही प्रभावित हैं।

चीन के दार्शनिक कन्फ्यूशियस पर रचित *कांपूषन चरित्रे* (1892), कृष्णराज ओडेयर तृतीय के दरबारी पर रचित *कुणिगल रामाशास्त्रिगल चरित्रे* (1910), हैदराबाद के मंत्री पर *सर सालार जंगन चरित्रे* (1917), बहमनी सल्तनत के मंत्री पर *महमूद गवानन चरित्रे* (1922) तथा अपनी ही शक्ति के बूते राज्य स्थापना में समर्थ शिवाजी की जीवनी *छत्रपति शिवाजी महाराज*[1] (1981) ये पांच जीवनियां *पुट्टण्णा ने* लिखी हैं। वे खासकर दो क्षेत्रों में सेवारत व्यक्तियों पर आसक्त रहे। एक परमार्थिक व धार्मिक क्षेत्र में निष्ठा से सेवा करने वाले और दूसरा शासन तंत्र में हाथ बंटाकर सफल प्रशासन करने वाले। इन दोनों क्षेत्रों के बीच पुट्टण्णा अपना गहरा संबंध स्थापित करते हैं।

पुट्टण्णा ने शैक्सपीयर के तीन नाटकों का कन्नड़ रूपांतर प्रस्तुत किया है। *सिंबलैन*

नाटक का रूपांतर है *जयसिंहराज चरित्रे* (1881) जो कथन रूप में है। *किंगलियर* नाटक का रूपांतर है *हेमचन्द्रराज विलास* (1899)। यह एक गद्य पद्य मिश्रित नाटक है। *हेमलेट* नाटक का रूपांतर है *हेमलता* (रचनाकाल : 1920, अप्रकाशित) यह भी गद्य पद्य मिश्रित नाटक है। इन तीनों नाटकों में पुट्टण्णा ने कन्नड़ की प्रकृति के अनुकूल औचित्यपूर्ण परिवर्तन किये हैं। शैक्सपीयर के नाटकों में गद्य के अत्यधिक प्रयोग करनेवालों में पुट्टण्णा अग्रणी हैं। उस जमाने में इसे एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ही माननी चाहिए। सुमति मदन *कुमारर चरित्रे* (1897), थामस रे द्वारा रचित *दि हिस्ट्री आफ सैंडफोर्ड एंड मर्टन* का रूपांतर ही है। कहानियों द्वारा बच्चों को नीतिपाठ तथा शैक्षणिक विषयों की जानकारी ही इनकी विशेषता है। ये चारों रचनाएं रूपांतर हैं। *हातिम ताय* (रचना : 1920, यंत्रस्थ) पर्शियन मूल की कृति है। इसके अंग्रेजी अनुवाद से पुट्टण्णा ने कन्नड़ अनुवाद तैयार किया है। उपलब्ध साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि *हातिम ताय* पुट्टण्णा की एकमात्र अनूदित रचना है।

सामंतों पर पुट्टण्णा द्वारा रचित *पालेयगाररु* (1923) प्रथम शोधग्रंथ है। इसके बाद *चित्रदुर्गद पालयगाररु* (1924), *गुम्मनायकन पालयद पालयगाररु* (1926), *हागलवाडी पाळयगाररु* (1931) तथा *इक्केरी संस्थानद चरित्रे* (1931) आदि रचनाएं प्रकाशित हुईं। जब पुट्टण्णा अमलदार थे तो दौरे पर जाते थे। उस समय उन्होंने सामंतों के वंशजों से अभिलेखों का संग्रह कर रखा था। इन सामंतों के बारे में इतनी व्यवस्थित जानकारी अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। अपने परिश्रम व शोधप्रवृत्ति के बल पर पुट्टण्णा ने कई नये तथ्यों का रहस्योद्‌घाटन किया, स्वीकृत कई गलतफहमियों को दूर किया। आज भी ये ग्रंथ उस क्षेत्र के आधारग्रंथ हैं, स्रोत ग्रंथ हैं।

दो भागों में रचित *हिन्दू चरित्र दर्पण* (1882), *हिन्दू चरित्र संग्रह* (1887), *कन्नड़ लेखन लक्षण* (1915) कन्नड़ ओंदनेय पुस्तकवु (1887)—ये चारों पुट्टण्णा की पाठ्यकृतियां हैं। प्रथम दोनों एम.बी. श्रीनिवासयूयंगार के साथ की सह रचनाएं हैं। तीसरे के गद्य पाठ पुट्टण्णा ने, और नवकाल की कविताओं को एस.जी नरसिंहाचार्य ने रचे हैं। चौथा पूर्णरूप से पुट्टण्णा की कृति है। उस जमाने में जब कि कन्नड़ में ऐसी पाठ्य रचना के सिद्धसूत्र ही नहीं थे, तब बाल शिक्षण सामग्री को अनुक्रम से जोड़कर रची गयी ये कृतियां आगे की पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुईं।

अक्तूबर 1883 में पुट्टण्णा ने एम.बी. श्रीनिवासयूयंगार के साथ मिलकर *हितबोधिनी* पत्रिका निकाली। इसमें पुट्टण्णा की सामाजिक चेतना उजागर हुई है। साहित्य, कला, विज्ञान, इतिहास, जीवनी, विदेशी वार्ता आदि कई उपयुक्त विषयों को पत्रिका में जगह मिली। पुट्टण्णा स्वयं लेखन कार्य में लग गये। छः महीनों के बाद जब बी.ए. अध्ययन के लिए उन्हें मद्रास जाना पड़ा तब पुट्टण्णा ने *हितबोधिनी* का कार्यभार एम.वेंकटकृष्णय्या को सौंपा।

पुट्टण्णा का कन्नड़ प्रेम और सामाजिक प्रज्ञा उनके पैंतीस कन्नड़ तथा पंद्रह अंग्रेजी निबंधों में सर्वाधिक आकर्षक है। यहां कन्नड़ राज्य के राजा-महाराजा, राजभक्त, वीरपुरुष और सामान्य जनता पर लिखे लेख हैं, विज्ञानियों से संबद्ध लेख हैं, विद्यार्थियों के लिए निबंध हैं और पुट्टण्णा के समसामयिकों पर लेख हैं। यहां तक कि भाषा से संबंधित निबंध भी हैं। ये सब समाज सुधारक के वलय से बद्ध हैं।

X X X

सन् 1915 में प्रकाशित उपन्यास *माडिद्दुण्णो महराया* एम.एस. पुट्टण्णा की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। कन्नड़ में मौलिक उपन्यास इससे पूर्व ही लिखे गये थे। उनमें प्रधान थे सन् 1899 में प्रकाशित गुल्वाडी वेंकटराव का *इंदिराबाई* और सन् 1905 में प्रकाशित बोळार बाबूराव का *वाग्देवी*। लेकिन पुट्टण्णा का *माडिद्दुण्णो महराया* ही बोलचाल की भाषा में लिखा पहला उपन्यास है। उपन्यास की मूलकथा बहुत छोटी है। परंतु उसके साथ उपकथाएं, वृत्तांत, वर्णन आदि को जोड़कर रोचक शैली के बल पर पुट्टण्णा ने अंत तक कुतूहल बनाये रखा है।

सदाशिव दीक्षित मैसूर के राजदरबार में राजकृपा-पार्शित एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। एक शिशु को जन्म देकर उनकी पत्नी चल बसी। बूढ़ी मां ही बच्चे का लालन-पालन करती रही। आगे संजवाड़ी के नीलकंठ जोइस की इकलौती पुत्री तिम्मम्मा से उसने विवाह किया। अपने इकलौते पुत्र किट्टा से जायदाद की सुरक्षा को असंभव जानकर जोइस, दामाद को ही सारा उत्तरदायित्व सौंपकर निश्चिंतता से स्वर्ग सिधारा। दीक्षित का पुत्र महादेव तिम्मम्मा की देख-रेख में पलता है। गांव के मास्टर पंत नारप्पयूया से वह पढ़ता है। *मार पहले और बात पीछे* के सिद्धांत वाले नारप्पयूया से जब बड़े लड़के बदला लेते हैं तो पंत नारप्पयूया भारी संकट में फंस जाता है। उसके सावधान होने में चार महीने लग जाते हैं। सारा उपचार, खान पान सब दीक्षित के घर में ही होता है। उस समय बच्चों को 'मन जीतकर पढाना, मार से नहीं', द्वारा दीक्षित के दिये गये उपदेश को गलत समझकर नारप्पयूया मन ही मन बदला लेने की ठानता है।

महादेव बड़ा हुआ, बुद्धिमान बना। दीक्षित के मामा पशुपति सांबशास्त्री की पोती सीता से उसका विवाह हुआ। सीता सुंदरी थी, गुणवती थी और पति के अनुकूल सती थी। तिम्मम्मा अपने रिश्ते से लड़की लाना चाहती थी। उसके बदले सीता आई तो वह बहू से जलती थी, उसका अनादर करती थी। इससे महादेव के प्रति उसकी प्रीति भी घट चली। तिम्मम्मा की बेटी साती कांटे की तरह सीता को सताती थी। सीता जब एक बेटे की मां बनी और साती शादी करके ससुराल चली तब जाकर तिम्मम्मा का गुस्सा कुछ ठंडा पड़ा।

गांव के माता-मंदिर के पुजारी के चल बसने के बाद एक तांत्रिक आया जो अपने को

स्वर्गवासी पुजारी का रिश्तेदार कहता था। दिन बीतते गये और अब वह अप्पाजी बन बैठा था। गांव के चोरों के गुट का यह प्रधान पोषक था। मंदिर के निकटस्थ अरुन्दम्मा की समाधि पर पूजा के लिए हर दिन आनेवाली सीता पर इसकी वक्रदृष्टि पड़ी। शकुनी नारप्पय्या के उकसाने से उसकी वासना जागृत हुई। उसके आमिष से सीता के बच निकलने से उस साध्वी के प्रति अप्पाजी के मन में काम के साथ क्रोध भी जल उठा। सीता पर जादू-टोना हुआ और वह महीनों तक बेहोशी की स्थिति में पड़ी रही। उसके रोग का उपचार ही नहीं हो सका। उसकी आंखें बंद हो गई पर आयु पूरी नहीं हुई थी। अग्निसंस्कार के बाद सारे लोग इस उम्मीद से घर लौटे कि गीली लकड़ी होने के बावजूद चिता जल उठेगी। पर ऐसा हुआ नहीं। उसी समय श्मशान की बगल से निकलने वाले कोयमत्तूर के रास्ते से एक भटजी अपने मित्र के साथ आ रहा था। मांत्रिक भटजी ने जान लिया कि इस शरीर में प्राण अभी हैं। जादू परिहारक मंत्र जपकर उसने सीता को बचा लिया। मंत्रशक्ति से खिंचकर अप्पाजी भी सीता के टोने में गाड़ी गई गुड्डी को लेकर चिल्लाते हुए आया। भटजी ने गुड्डी को जलाया और पुजारी के दांत उखाड़ लिये ताकि भविष्य में उससे और किसी को हानि न पहुंचे। सीता को पाकर घरवाले निहाल हो गये। चोरों की टोली में सबसे छोटा सदस्य अमासे के मुखबिर बन जाने से सारा रहस्य खुल गया। उसके अतिरिक्त बाकी सबको जेल जाना पड़ा। नारप्पय्या और पुजारी को भी सजा भोगनी पड़ी। संजवाड़ी के लोग वहां से चले गये। सदाशिव दीक्षित भी संजवाड़ी छोड़कर मैसूर में आ बसा।

कहानी का परिवेश चामराजनगर के निकट स्थित संजवाड़ी का है। भूमिका में पुट्टण्णा ने कहा है, "पुराण प्रसिद्ध पुरुष व्याकरण सूत्र बन गये हैं। साधारण मनुष्यों में दिखने वाले धीर उदाहरण बन गये हैं।" उपन्यास को पढ़ने पर लगता है कि रामायण को ही मन में रखकर उसे रचा गया है। यह भी स्पष्ट होता है कि रामायण की सीता ही यहां की सीता है।

पुट्टण्णा ने परंपरा के सौजन्य के प्रतीक के रूप में सीता का चित्रण किया है। एक स्तर पर सीता के इर्द-गिर्द ही कहानी चलती है और वह उसका केंद्र बिंदु बन गयी है। अपनी पीड़ा आप सहकर चुपचाप रह जाना उसका स्वभाव है। पति के प्रति समर्पण भाव, पुत्र में प्राण तथा घर के गुरुजनों के प्रति गौरव इसकी सहज प्रवृत्ति है। वह अपनी रक्षा आप करने में असमर्थ है। यह परिवार की न्यूनता है, न्यायमार्ग का कंटक है। घर में उसे आदर और सहानुभूति मिले, संकट के समय साथ नहीं मिला। सास की गालियां चुपचाप सह लेती है पर उसे मैसूर की वारांगना कहने पर या महादेव की निंदा करने पर वह नम्रता से ही सही विरोध करती है। यह अर्थगर्भित है। व्यक्ति भले ही सात्विक हो पर अपने व्यक्तित्व के केंद्रबिंदु का अपमान नहीं सहेगा। यही कारण है कि सीता कोरा आदर्श न बनकर वह मानवीय रूप में हमारे सम्मुख आती है। सास-ननद के जुल्म से ही वह त्रस्त है। उसी समय उसे बाहर से फेंके गये काम के जाल से जूझना पड़ता है। इस समय उसके मातृत्व की गरिमा, उसका मनस्थैर्य, पड़ोसन की अचानक सहानुभूति तथा सतियों के चरित्र ही उसका उद्धार करते हैं।

घेरे हुए संकटों की अग्नि परीक्षा में सफल सीता भटजी की मदद से वास्तविक अग्निपरीक्षा में भी सफल होती है।

बताया गया है कि पुट्टण्णा के व्यक्तिगत जीवन में पहले विवाह में उन्हें कटु अनुभव हुए थे। उनके लिए नारी का पातिव्रत्य उसकी प्रामाणिकता का एक रूप है। इस परिस्थिति में पुट्टण्णा जैसे नाजुक मन के व्यक्ति पर क्या बीता होगा। इस कमी को भरने के लिए उन्होंने प्रतिकूल अंत वाले उपन्यास की रचना की। उन्हें रामायण बहुत पसंद थी। संभव है कि इसका कारण उसमें वर्णित पातिव्रत्य ही हो। इस तरह पुट्टण्णा के जीवन और साहित्य में अभिन्नता स्थापित हो गयी। जीवन की वेदनाभरी अवधि में और "माडिद्दुण्णो महाराया" के रचनाकाल के बीच के अंतराल में रोष और दुख पक चले थे। लेखनी में परिपक्वता आ गयी थी। किसी संस्कृति की मान्यता को वैयक्तिक धरातल पर अनुभव में लाने और उसे आत्मसात् कर कलात्मक ढंग से साहित्यिक कृति में ढालने का एक सुंदर उदाहरण है *माडिद्दुण्णो महाराया*।

उपन्यास के काल पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि इसमें बोलचाल की भाषा पर जोर दिया गया है। वे पाठक तक अर्थसंवहन करना चाहते हैं। उन्हें किसी तरह का भाषिक-संकोच नहीं है। सांप्रदायिकता की जंजीरों से परंपरा की रूढिबद्धता से कन्नड़ गद्य को छुड़ाकर उन्होंने भाषा को लालित्य और लचीलापन दिया।

कर्मसिद्धांत, उपन्यास में स्पष्ट रूप से गोचर होता है। कर्म करने से फल को भोगना पड़ता है। इसी तत्व का दूसरा नाम है उपन्यास का शीर्षक *माद्दिदुण्णो महाराया*। लेखक के तत्व प्रतिपादन से कृति का कलापक्ष कुंठित नहीं हुआ है। ध्यान देने की बात है, "इस उपन्यास का शीर्षक उसके नैतिक आशय को प्रतिध्वनित करता है कि किसी लेखक की तात्विक दृष्टि उसकी कलाकृति की असफलता का मूल कारण नहीं बनती।"[2] स्वीकार करना पड़ता है कि उपन्यास तंत्र इस युग की दृष्टि से कुछ खुरदरा है, पर कृति के प्रकाशन काल पर ध्यान दें तो यह कमी न असहज है, न बड़ी है। उपन्यास अपने सारे दोषों के साथ ही अपने अन्तः सत्व के कारण स्वीकृत है। *माडिद्दुण्णो महाराया* को प्रकाशित हुए आठ दशक बीत गये हैं। पर इसकी लोकप्रियता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

एच. एस. सुजाता

---

1. ये कृतियां लेखक के जीवनकाल में पाण्डुलिपि के रूप में रहीं और अब प्रकाशित हुई हैं।
2. एम.जी. कृष्णमूर्ति, आधुनिक भारतीय साहित्य मत्तु इतर लेखनगलु, पृ.268. 19.70, अक्षर प्रकाशन, सागर, कर्नाटक।

1

शुभमस्तु - निर्विघ्नमस्तु

किट्टा जोइस : शुभमस्तु, शुक्लाम्बरधरं विष्णुं। शशिवर्णम् चतुर्भुजं। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्। सर्वविघ्नोपशान्तये।

स्वस्तिश्री विजयाभ्युदय शालिवाहन शक प्रभावादि षष्ठि संवत्सरों में से प्रमाद नाम संवत् मार्गीश्वर शुद्ध 04 मंगलवार 63 - 82; घनिष्ठानक्षत्र 05 - 0; वैधृति 60 - 72; बालकरण 63 - 04; दिन में सामान्य, रात्रि विशिष्ट, मसणकम्मा देवी का रथोत्सव, श्रीरंग में बृहदेश्वर स्वामी का रथ। ऐसालूवार तिरुनक्षत्रं। आज सभी कामकाज के लिए व्यतीपात है। कल सारे कार्यकलाप के लिए वैधृति है। आज और कल सभी काम काज के लिए शुभ है। कल से घनिष्ठापंचक का प्रारंभ है, विष्णुपंचक के अनुष्ठान के लिए अनुकूल है। स्वस्तिस्सर्वे, ग्रहास्सुनक्षत्रा शुभ एकादशस्थान फल सिद्धिरस्तु।। राजद्वारे दिग्विजयमस्तु।। समस्त सन्मंगलानि भवन्तु। धन-धान्य समृद्धिरस्तु- यह है आज और कल की दिनशुद्धि।

मारमणराय अब तक पंचांग - श्रवण को अनसुनी करता रहा, पर पुरोहित के मुंह से 'राजद्वारे दिग्विजयमस्तु' के निकलते ही सोचने लगा कि अब राजदृष्टि उस पर और बढ़ेगी। ज्योतिषी जी महाराज 'धनधान्य समृद्धिरस्तु' तक पहुंचे ही थे कि दफादार वीरनायक हाजिर हुआ और बोला, "हुजूर! मुखिया संगेगौडा आया है।"

मारमणराय : जोइस जी! कैसे अमृत भरे वाक्य हैं आपके! वाह, क्या खूब कहा आपने 'धनधान्य', देखिए उनका आगमन हो गया! कहो, संगण्णा! कैसे आना हुआ?

संगेगौडा : यों ही हाजिर हुआ सरकार, दरबार में।

मारमण : मैने जो कहा था, लाये हो?

संगेगौडा ने "जी सरकार" कहते हुए मेज पर सौ रुपये गिनकर रख दिये।

मारमण : (रुपये देखकर खुश होने के बावजूद भौंहें सिकोड़ कर गुस्से का बहाना करते हुए) बाकी में से पचास घटाते हो? अक्ल मारी गई है क्या? उसके मिलने तक कौन फैसला सुनायेगा? कहा दो सौ, लाया सौ। हर मामले में कटौती, क्यों? इन दानों से पेट भर जायेगा? क्या इसी के लिए हम देश छोड़कर परदेश आये? क्यों रे?

संगेगौडा : बाकी रकम कल मिल जायेगी, मालिक।

मारमण : जोइस जी! हमारे देश में यह बात नहीं। बात पक्की, काम पक्का। यहां कुछ भी पक्का नहीं। हमारी तो धर्मभूमि है, यह भूमि ऐसी नहीं। यहां कुछ भी नहीं।

जोइस : आप ठीक कहते हैं, हुजूर। क्या कोई उसकी बराबरी कर सकता है? शास्त्र भी कभी झूठ हो सकता है? कहा है, लक्ष्मीम् क्षीर समुद्र राजतनयाम्। क्या कहें, आपका संपूर्ण अधिकार है। इस मुल्क में सूबेदार आये, सूबेदार गये, यह शान किसी की नहीं रही।

मारमण : एय संगण्णा। सुना, जोइस जी ने क्या कहा? उन्हें भी कुछ चढ़ाया कि नहीं?

संगेगौडा : कुछ भी नहीं लाया न, मालिक।

यह कहते हुए संगण्णा ने अपनी तमाकू की थैली में हाथ डाला, ढूंढ़कर पैसे का एक सिक्का निकाला और उसे जोइस के हाथ थमाया। जो मिला उसी से किट्टा उस वक्त चुप रह गया। सूबेदार से विदा ले, बाहर आकर देखता क्या है कि वह सिक्का घिसा हुआ है। "अपना-अपना भाग्य" सोचकर वह बाजार की ओर मुड़ा ही था कि सूबेदार के दीवानखाने से बाहर निकल रहे संगण्णा से सूबेदारनी कह रही होती है, "मुखिया! घर में दाल का दाना तक नहीं है। आठ दस बोरे ला नहीं सकते थे साथ? महीने भर काम चलता।" पति सूबेदार का मुंह देखकर, आगे बढ़ी, "वह हमेशा खाली हाथ आता है, तो आप चुप रहते हैं। क्यों जी, अठवाड़े में एक दिन भी दाल नहीं चखेंगे?"

संगण्णा : हमारे यहां तूर का दाना तक नहीं उगा, मालकिन।

इसी बीच सूबेदार की बेटी दौड़ती हुई आई। संगण्णा के सामने खड़ी होकर बोली, "क्यों मुखिया? मुझे पैसे नहीं दोगे?" तुरंत संगण्णा ने गोल थैली में से चवन्नी निकालकर उस तरुणी के हाथ में रखी। उसी समय रसोईघर में से भौंककर एक कुत्ता बाहर निकला। संगण्णा को बचकर भागने का मौका मिल गया। वह बाहर कदम रख ही रहा था कि सूबेदार दीवानखाने की खिड़की के पास आ खड़े हुए। उनकी ओर देखते हुए रसोइया सुब्बण्णा राग अलापने लगा, "संगण्णा! मन भर गाय का मक्खन भेजो न। मालिक को घटिया घी नहीं सुहाता।" 'हां सुब्बण्णा, भेज दूंगा' कहकर संगण्णा निकल रहा था तो दफेदार से डांट पड़ी, "क्यों रे मुखिया, सौ-दो सौ का नजराना चढ़ाते हो! हमारे लिए दो मन अनाज नहीं निकलेगा?"

मुखिया ने "अभी ग्रामदेवी के त्योहार में लगे हैं माई-बाप, बाद में पहुंचा दूंगा। हां, याद आई" कहकर खिड़की में खड़े सूबेदार को देखकर कहा, "हुजूर, कल हमारी ग्रामदेवी का त्योहार है। क्या उसके लिए भी लैसन की जरूरत है?"

मारमण : अरे, लैसन के बिना त्योहार कैसा?

संगण्णा : लैसन के लिए क्या लगता है, हुजूर?

मारमण : स्टाम्प अठन्नी का, हमारी फीस पचास रुपये?

ठीक है" कहकर मुखिया निकल पड़ा।

किट्टा जोइस यह सब देख रहा था। उसने सोचा, सूबेदारजी के यहां संगेगौडा की खूब चलती है। सरकार तक इसकी पहुंच है। इससे दोस्ती बढ़ानी है। मुखिया जो ठहरा, इसे खुश न रखे तो इस संजवाडी गांव में जीना दूभर हो जायेगा। यह तो हमारा ही आदमी ठहरा , आखिर हम उसके कुल-पुरोहित हैं। फिर भी उसने सूबेदार की लड़की को चवन्नी दी और मुझे घिसा पैसा। ठीक है, देख लेंगे हम भी। इसके पिता का श्राद्ध निकट ही है। तिलांजलि देते वक्त, चार नाम और जोड़कर पैसे ऐंठने हैं।

इस तरह बेवकूफी और चालाकी के बीच डोलते जाते हुए किट्टा जोइस ने लंबे डग मारकर तेजी से चलनेवाले संगेगौडा को देख लिया। वह चिल्ला उठा, "अरे संगण्णा ! ऐसे भाग रहे हो जैसे तुम्हारे ही पैर हैं और दूसरे के नहीं। बात तक नहीं करता है मुझसे।"

संगेगौडा : काम है न, किट्टप्पा।

किट्टा : रुको, रुको! सब जानता हूं। नसवार निकाल, घिसा पैसा देता है!

संगण्णा : लाऊं कहां से? तुम भी क्या लूटते हो, बामन महाराज?

किट्टा : ओह! तो सूबेदार के घर से तू कुछ चढ़ाये बिना ही बच निकला! क्यों? बाल-बच्चे सबने घेर लिया था। जब उनकी बेटी भी तुमसे पैसे ऐंठ सकती है, मुझे थोड़ा-सा दे दोगे तो तुम्हारे बाप का कुछ जायेगा क्या?

संगण्णा : इसे यहीं भूल जा, किसी से मत कहना। सरकार की बात है, तुमसे मतलब?

किट्टा : तब चने खरीदने के लिए तीन पैसे दो न। चलो, एक पैसा ही सही, दे दो। नमकीन खरीद लूंगा।

संगण्णा : चुप रहो किट्टप्पा, कल मैं चाट खिलाऊंगा तुम्हें। अपने बहनोई से मत कहना।

किट्टा जोइस ने मान लिया और चला गया। संगण्णा भी घर की ओर चल पड़ा। वह मन ही मन सोच रहा था, "इस जोइस के सामने सूबेदार से नहीं मिलना था। उसके सामने ही सौ रुपये चढ़ाकर मैंने भूल की। सूबेदार की लड़की, उस नई नवेली को चवन्नी न देता तो अच्छा होता। यह बुद्धू इस बात को न जाने कहां-कहां फैलाता फिरेगा। ऐसा हो भी जाय, तो क्या बुरा? लोग समझेंगे कि सूबेदार जी के यहां मेरी खूब चलती है, यही न? लोग मुझसे डरने तो लगेंगे।"

2

संजवाड़ी में मैसूर से आकर एक ब्राह्मण परिवार बसा था। सदाशिव दीक्षित नामक एक ब्राह्मण मैसूर में निवास करता था। इसकी पहली पत्नी एक शिशु को जन्म देकर चल बसी थी। उस वक्त बच्चा दो महीने का था। घर में अकेली बूढ़ी मां थी, और कोई न था। वह ऊंचा सुनती थी। उससे घर का कामकाज नहीं हो पाता था। वह घर संभालने और बच्चे की देखभाल तक करने में असमर्थ थी। नौकरानी द्वारा बच्चे को दूध पिलाते थे। वह नखरेवाली निकली, घरवालों को और बच्चे को बहुत सताती थी। एक बार वह दिन-भर गायब रही। रात के दस बजने पर भी नहीं आई। बच्चा बहुत रो रहा था, कोई काम करने नहीं देता था। रो-रो कर उसका पेट फूल गया। कोई उसे चुप नहीं करा सका। लाख ढूढ़ने पर भी धाई नहीं मिली। सदाशिव दीक्षित परेशान हो मां से बोला, "मां! बच्चे का इस तरह रोना मुझसे देखा नहीं जाता। मैं परदेश चला जाऊंगा। बच्चे को किसी पुण्यात्मा की गोद में डाल देंगे।" पार्वतम्मा भी आंसू बहा रही थी। रात के दस बजे के बाद धाई आई। उसको देख बूढ़ी मां का मन जल उठा।" अरी पापिन, हमें इस तरह क्यों सताती है? इसके बदले बच्चे को मार क्यों नहीं डालती," कहते हुए बच्चे को उसके पैरों पर पटक दिया। बच्चे के होश उड़ गये। धाई ने बच्चे को चुपचाप उठाया, कानों में फूंककर मुंह खुलवाया। और दूध पिलाने लगी। कुछ समय के बाद बच्चा होश में आया। ऐसी जिंदगी में एक-एक दिन बिताना दूभर हो रहा था।

पत्नी वियोग के समय सदाशिव दीक्षित की उम्र तीस वर्ष की थी। व्यक्ति तेजस्वी और स्वस्थ था। ऋग्वेद का साधारण अध्ययन किया था। जन्मपत्री व पंचांग की गणना कर सकता था। ज्योतिष में भी प्रवेश था। पर वह पंचांग-श्रवण के लिए किसी के द्वार पर नहीं जाता था। किसी भी काव्य-पुराण को समझता था, बिना किसी की सहायता से व्याख्या कर सकता था। संस्कृत का इतना ज्ञान रखता था, पर वह कथावाचन करने कहीं नहीं जाता था। व्याख्या करने के साथ पूर्वापर प्रयोग की जानकारी थी, पर आम श्राद्ध के लिए किसी के यहां नहीं जाता था। वेदांतशास्त्र को जानता था पर शुष्क पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए पुराण वैराग्य की बातें नहीं बघारता था। यह लौकिक व्यवहार में भी चतुर था पर अर्जीनवीसी करके लोगों में फूट नहीं डलवाता था। ग्रंथावलोकन में रुचि थी, राजयोग में प्रवेश था। मैसूर में दीक्षित का मामा दरबारी विद्वान् था। नाम था पशुपतिसांबशास्त्री। राजमहल से पांच अशर्फियों का विद्वान वेतन मिलता था। उस जमाने में यह बहुत वड़ा वेतन

माना जाता था। सदाशिव दीक्षित अपने मामा के साथ अक्सर राजमहल जाता और सभा में बैठता। शास्त्रार्थ के समय वह चुप न रहता, पांडित्य की प्रखरता से मदहोश हो बीच में बोल उठता। एक बार महल के नामतीर्थ ओसारे में विशिष्ट शिवपूजा हो रही थी। किसी बात को लेकर शास्त्र-चर्चा छिड़ गई। तब सदाशिव दीक्षित द्वारा प्रस्तुत वाक्यार्थ सुनकर कृष्णराज प्रभु प्रसन्न होकर कह उठे, "यह कौन है जी? वज्रशावक लगता है।" उसी समय से दो अशर्फियों के वेतन पर उसकी नियुक्ति हो गई। पांडित्य को देखने भर की देर थी, प्रभु किसी की सिफारिश के बिना ही गुण ग्रहण करके पुरस्कार प्रदान करते थे।

इस प्रकार अपनी विद्या के कारण सदाशिव दीक्षित को राज-गौरव मिला था। फिर भी घर में बूढ़ी मां, नादान शिशु व घर संभालने के लिए किसी का आसरा न था। इस वजह से तथा मामा के अनुरोध और मां के हठ के कारण सदाशिव दीक्षित ने फिर से शादी करने की बात मान ली। पशुपतिसांबशास्त्री कन्या खोजने के लिए निकला, तो संजवाडी जोइस की कन्या का पता चला। कन्या की आयु आठ वर्ष की थी। जोइस श्रोत्रिय ब्राह्मण था। वह चिंतित था कि कन्या विवाह की आयु पार कर रही है। अतः स्वप्रतिष्ठा को ताक पर रखकर दूसरे रिश्ते में भी कन्या देने के लिए तैयार था। सदाशिव दीक्षित की योग्यता सुनकर उसे बड़ी खुशी हुई। नक्षत्रानुकूल देखने पर ग्यारह कूट मिलते थे। उसी माघ के शुरू वाले पंचक में ही संजवाडी में विवाह निश्चित हुआ। शक्कर और फल के साथ विवाह निमंत्रण पत्रिका प्रभु के सामने पेश करते ही दो बोरे चावल, पर्याप्त परिकर, एक पीताम्बर, एक रंगीन साड़ी, दो जोड़ी धोतियां तथा एक सौ रुपये नकद देने का हुक्म हुआ। प्रभु के बख्शने से क्या होगा? केवल आदेश होगा। असली बख्शनेवाले बख्शी होते हैं। उस जमाने में तिम्मण्णशास्त्री नामक सज्जन राजा के निकटवर्ती रहकर अबोध लोगों द्वारा मंत्री कहलाए जाते थे। महल के व्यय को कम करने का नाटक खेल रहे थे। उन्होंने राजा साहब द्वारा दिये गये इनाम का आधा ही सदाशिव दीक्षित को दिलवाया। संजवाड़ी में विवाह संपन्न हुआ।

संजवाडी जोइस के पास अच्छी जमीन जायदाद थी। मौसम में दो सौ बोरे अनाज आता था। सालाना पांच सौ रुपयों की आमदनी थी और दो - तीन हजार का लेन-देन था। ज्योतिष के जातक-भाग व प्रश्न-भाग में इसकी टक्कर का पंडित दो चार-कोस में और कोई नहीं था। महाराजा कृष्णराज ओडेयर तक इसकी प्रशंसा पहुंची थी। जब कभी राजा साहेब चामराजनगर आते तो संजवाडी के नीलकंठ जोइस को बुला भेजते, अपनी जन्म-पत्री दिखाते और प्रश्न पूछा करते थे। प्रभु कृष्णराज ओडेयर जातक-भाग के स्वयं अच्छे ज्ञाता थे। छोटे मोटे जोइस उनके सम्मुख जाने से डरते थे। जब स्वयं राजा साहेब बार-बार बुलावें और ज्योतिष विषयों की चर्चा करें, तब स्पष्ट था कि नीलकंठ जोइस की योग्यता असाधारण है।

इस जोइस के एक लड़की थी तिम्मम्मा। इसी का विवाह सदाशिव दीक्षित के साथ हुआ था। कृष्ण नामक एक लड़का भी था। वह अधिक बुद्धिमान न था। वह बेवकूफी करते हुए घूमता था। कुछ ही समय बाद नीलकंठ जोइस बीमार हुआ। उसका अवसानकाल निकट

था। उसने दामाद सदाशिव दीक्षित को बुला लाने के लिए एक नौकर को मैसूर रवाना किया। उसके हाथों भेजे हुए पत्र में यह लिखा था–

चिरंजीवी सदाशिव दीक्षित को अनेक आशीर्वाद।

इस शुक्ल पक्ष की एकादशी तदनुसार शुक्रवार तक, यहां सभी कुशल है, वहां का कुशल लिखें।

इसी बीच, एक महीने से मैं थकावट महसूस कर रहा हूं। ज्वर से कमजोर हूं। अतीव पीड़ित हूं। परिस्थिति को देख इस शरीर के बचने की आशा नहीं बंधती। यहां किसी का आसरा नहीं है। इसे आप जानते ही हैं। बहन मेरी बूढ़ी है। विवाह के समय से आप चिरंजीवी कृष्ण को जानते हैं। पत्र पाते ही सभी काम-काज छोड़ कर आने की कृपा करें। पशुपति सांवशास्त्री जी को मेरा प्रणाम कहें। उनकी अनुमति प्राप्त करके अविलंब चले आएं। निश्चित रूप से पत्र पहुंचाने हेतु नौकर को भेज रहा हूं। इत्याशीषः नीलकंठ जोइस।

पत्र पढ़कर सदाशिव दीक्षित ने महल से सप्ताह भर की छुट्टी ली। उसी दिन चलकर दूसरे दिन शाम तक संजवाडी पहुंचा। जोइस उसे देखकर उठ बैठा और कुशल मंगल पूछ कर बोला, "आप भोजन कर लीजिए। आपसे बहुत बातें करनी हैं।" इसके बाद सदाशिव दीक्षित रात को सो गया।

रात के तीन बज रहे थे। जोइस ने दामाद को जगाकर उससे कहा, "आप थके मांदे आये हैं, मैं आपकी नींद में खलल डाल रहा हूं। मेरी बीमारी बढ़ रही है। आपके आने की प्रतीक्षा में सांस रोके रहा। अब निश्चिंत हूं। यहां घर का सहारा कोई नहीं। कृष्ण की नादानी आपसे छिपी नहीं है। दम तोड़ने से पहले सब कुछ बता देना चाहता हूं। मेरी काफी जायदाद है। उसकी देखभाल कर के घर की तरक्की करने की ताकत कृष्ण में नहीं है। लीजिए, यह चाबी, सकल संपत्ति आपके हवाले कर रहा हूं। उसमें आप किसी भी लेन-देन का व्यवहार कर सकते हैं। किसी को हिसाब-किताब दिखाने की जरूरत नहीं। कृष्ण की शादी करने की इच्छा थी पर रिश्ता कहां से आए? आगे भी उसकी शादी की उम्मीद नहीं दिखती। जन्म-पत्री में विवाह का योग नहीं है। मेरा वंश यहीं न रुक जाये, आप यहीं आ जाइए। पत्नी तिम्मु और अबोध कृष्ण को पालिए। अधिक बोल नहीं सकता, दम उखड़ रहा है। यह मामूली गांव नहीं है। मुखिया दिन-दहाड़े चोरी करता है, तो पटवारी है लफंगा और कस्बे के अधिकारी लुटेरे। मुझे अपने काम से मतलब था, दूसरों की बात में टांग नहीं अड़ाता था। तिस पर राजा साहब की कृपादृष्टि थी, तो ये सबके सब मुझ से जलते हैं। मेरे दम तोड़ने की राह देख रहे हैं। आगे भगवान की इच्छा, फिर भी मनुष्य को यत्न तो करना ही है। इसलिए मैंने सब आपसे बता दिया है। मैं अधिक बोल नहीं सकता।

सदाशिव दीक्षित : श्वसुर श्री, मैंने आपकी सारी बातें सुनीं। उतनी दूर तक सोचने की अब कोई जरूरत नहीं दिखती। अब आधी रात है। आप सो जाइए तो स्वास्थ्य सुधर जायेगा। सवेरे इसके बारे में सोच लेंगे।

जोइस : नींद भी नहीं, कुछ भी नहीं। थकावट बढ़ रही है। बोल नहीं पा रहा हूं।

यह कहकर जोइस बिस्तर पर लेट गया। बेहोशी के लक्षण दिखने लगे। दीये के प्रकाश में देखने पर आंखें पथरा गई थीं। सब घबरा गये। बच्चों सहित सभी जाग उठे। कानों में फूंकने पर भी होश नहीं लौटे। "गोंड-गोंड" की आवाज के साथ सांस उखड़ने लगी। घबराहट फैल गई, बिस्तर सहित मरीज को बाहर के छोटे कमरे में ले आये। पंचांग देखने पर त्रिपादी नक्षत्र निकला। किट्टा बोल पड़ा, "बापू खर्राटे मार रहे हैं, नींद आई होगी। हम लोग भी सो जायें, जीजा जी। तिम्मु! सामनेवाले घर की पातक्का ने जो बेसन के लड्डू दिये थे, वे हैं भी या तुम निगल गईं? मुझे एक टुकड़ा भी नसीब नहीं होता, सब तुम्हारे पेट में जाते हैं।" इसकी मूर्खता पर दुखी होकर सदाशिव दीक्षित बोले, "किट्टा! छोटी कलछुल से दीक्षित जी के मुंह में दो बार गंगाजल डालो।" इसके साथ जोइस के प्राण उड़ गये।

सदाशिव दीक्षित ने आगे के सारे कर्म संपन्न किये। बाद में आय-व्यय का हिसाब देखा और नीलकंठ जोइस की बहन से बोले, ''ताई! एकाएक सब कुछ छोड़-छाड़ कर गांव आ पहुंचा। मैसूर जाकर मामा से सलाह मशविरा करके सप्ताह भर में लौटूंगा।''

वेंकम्मा : यहां कोई आसरा नहीं। इस कमबख्त गांव में लफंगे ही लफंगे हैं। न जाने कब क्या हो?

सदाशिव : आप चिंता न करें, मैं सारी व्यवस्था करूंगा और तुरंत लौटूंगा।

सदाशिव दीक्षित मैसूर लौटा और मामा पशुपति सांबशास्त्री को सब कुछ बताया। उसी दिन शाम को पशुपति सांबशास्त्री तथा सदाशिव दीक्षित राजमहल पहुंचे और अंबाविलास में महाराजा साहब के दर्शन किये।

राजा : कहो वज्रशावक, कब आना हुआ?

सदाशिव : आज ही सवेरे, महाप्रभु। मेरे श्वसुर जोइस जी का स्वर्गवास हो गया। जब मैं वहां पहुंचा तो वे स्वस्थ ही थे। हम लोग बिमारी को ठीक तरह से ताड़ न सके। वे कुछ कमजोर अवश्य थे। जिस दिन मैं वहां पहुंचा उसी रात को मुझे बुलाकर हिसाब-किताब सौंपकर बोले, "मेरे घर का उद्धार करना। संजवाडी में ही रहकर परिवार की देखभाल करना। मुझे और किसी का सहारा नहीं है।" मेरे हाथ पकड़ लिये थे। तभी उनकी सांस फूलने लगी। क्षणार्ध में उनके प्राण-पखेरू उड़ गये, प्रभो।

राजा : क्या नीलकंठ जोइस जी का देहावसान हो गया? मैंने उनसे बहुत-सी बातें सीखीं, ज्योतिष के अनेक रहस्यों को जाना। बड़े योग्य सज्जन थे। चाहता था कि दरबारी विद्वानों की सूची में उनका नाम शामिल करूं। चामराज नगर पहुंचने पर याद करता था, पर मैसूर पहुंचकर भूल जाता। यही चक्र चलता रहा, मुझसे उनकी कोई सहायता नहीं हो

सकी। हमारी मैत्री को देखकर लगता है कि हमारे बीच ऋणऋणी भाव न था। और कुछ नहीं सूझता। मैं उनके परिवार के कष्टों को जानता हूं। लड़का नादान, और कोई आसरा नहीं है। उनका वंश नष्ट ही समझो। वज्रशावक! तुम वहां बस जाना। उनके वंश को आगे चलाना। चाहे जब हाजिर होना, वेतन पाना। मेरे और जोइस जी के नाते को दृष्टि में रखकर इसे निभाना। विद्वान पुरुष गांवों में बसना नहीं चाहते, पर मैं तुम्हें जानता हूं। तुम्हारे पांडित्य पर आंच नहीं आयेगी।

सदाशिव : महाप्रभु, जो विनती करना चाहता था उसका आप ने स्वयं आदेश दे दिया। आपका आदेश सिर आंखों पर महाप्रभु।

राजा साहब से विदा लेकर सदाशिव दीक्षित तथा पशुपति सांबशास्त्री घर लौटे। दीक्षित ने मां से कहा, "मां! आप जानती हैं कि श्वसुर जी का देहांत हो गया और उनकी अपार संपत्ति पराई बननेवाली है। आप वृद्धा को यहां छोड़कर मैं वहां जा नहीं सकता। बच्चा छोटा है, उसका लालन-पालन भी करना है। आप और अधिक खप नहीं सकतीं। राजा साहब ने भी सब कुछ सोचकर संजवाडी में ही रहने का आदेश दिया है। वेतन भी मिलता रहेगा। अब आप जैसा कहेंगी वैसा ही होगा। पर हां, लोग कहेंगे कि दीक्षित घरजंवाई बनकर ससुराल में जा पड़ा है।

पशुपति : दीदी! मुझे हर दृष्टि से संजवाडी जाना ही ठीक लगता है। तुम मन छोटा न करो, तुमसे अब काम नहीं बनता। बिना मां के बच्चे की देखभाल करना और घर को संभालना तुमसे संभव नहीं है।

पार्वतम्मा : आप जैसा कहेंगे वैसा ही होगा, मैं क्या जानूं? दिन गिननेवाली बूढ़ी हूं।

इस तरह सोचकर घर और भू-संपत्ति की देख-रेख मामा को सौंपकर सदाशिव दीक्षित ने अपने परिवार के सदस्यों को लेकर संजवाडी के लिए प्रस्थान किया।

3

उस जमाने में चामराज नगर का चामराजेश्वर मंदिर बन रहा था। उसी समय नंजनगूड के नंजुंडेश्वर मंदिर के बाह्यांगन, भीतरी और बाहरी ओसारे, बाहर महाद्वार के ऊपर सात आंखोंवाले गोपुर का निर्माण भी जोर-शोर से चल रहा था। उसी तरह चामुंडी पहाड़ी पर स्थित चामुंडेश्वरी माता के मंदिर के बाह्य-प्राकार, महाद्वार के बृहत् गोपुर का काम भी चल रहा था। लगता है कि मेलुकोटे के चेलुवराय स्वामी के मंदिर में भी कुछ काम हो रहे थे। और भी कई स्थानों में बड़े-बड़े भवनों के निर्माण-कार्य हो रहे थे। ये सारे काम कृष्णराज प्रभु खुद करवाते, निर्माण-कार्य का स्वयं निरीक्षण किया करते थे। धार्मिक कार्यों में उन्हें बड़ी आसक्ति थी, उन्हें वे भगवत् सेवा मानते थे। उस समय वे देहश्रम की परवाह नहीं करते थे। दोनों हाथों से धन लुटाते थे। उस समय कई लाख रुपयों का काम चल रहा था। चामराजेश्वर, नुंजुंडेश्वर, मैसूर के प्रसन्न देवी-देवताओं के लिए कई लाख रुपयों के रत्नजटित आभूषण, सोने-चांदी के बर्तन तथा अन्य वस्तुएं बनवायी हैं। इसी तरह के अनेक धार्मिक कार्य किये हैं। ऐसे कार्य करने में उनके हाथ रुकना नहीं जानते थे।

इसी सिलसिले में उन्होंने कई धर्मशालाएं खोलीं। ब्राह्मणों के निवास के लिए कई मुहल्ले स्थापित किए, अनेक परिवारों को वृत्ति स्वास्थ्य प्रदान करके उनको आश्रय दिया। अनगिनत धर्मकार्यों के लिए प्रभु ने करोड़ों रुपये लुटाये। धर्मशालाओं और मंदिरों का भवन निर्माण-कार्य ठेके पर नहीं उठाते थे। ठेके पर भवन निर्माण-कार्य लेनेवाले मिस्त्री उन दिनों नहीं हुआ करते थे। उस जमाने में ताजा बनी इमारतें गिर नहीं पड़ती थीं। भवन के गिर जाने पर कोना ठीक नहीं जमा, दरार पड़ गई, ईट में कंकड़ थे तो पकी नहीं, चूने में राख थी तो चिपका नहीं, लकड़ी खोखली थी, पता न चला आदि सबूत देकर, फिर से बड़ी रकम के लिए इंदराज करके बढ़ी हुई दरें दिखाकर ठेकेदार के साथ खुद भी मालामाल होनेवाले शिल्पी-श्रेष्ठ उस ज़माने में बने नहीं थे। उस जमाने में एक ही बार भवन निर्माण करते थे, जो बनता था वह पक्का हुआ करता था। उन इमारतों को तोड़ने में आजकल जो खर्च लगता है उससे अब नया भवन ही बन सकता है। राज और मजदूर इस तरह पक्का काम किया करते थे। निगरानी के लिए सद्दीवाल नामक अधिकारी नियुक्त था। काम जैसे-जैसे होता वैसे-वैसे स्वयं कृष्णराज ओडेयर ही जाकर निरीक्षण करते थे। इसलिए नंजनगूड और चामराजनगर में बन रहे मंदिरों के निरीक्षण के लिए राजा साहब अक्सर जाया करते थे। उस जमाने में सबसे तेज सवारी थी जोड़ी घोड़ों की गाड़ी। एक राजा के लिए इस तरह के

निरीक्षण कार्य से होनेवाला श्रम कम नहीं था। सफर की थकावट, शारीरिक श्रम और खतरे से जब आम जनता तक घबरा जाती थी तो सुकुमार जीवन बितानेवाले राजा-महाराजाओं का क्या कहना है? फिर भी हमारे राजा साहब खुद निरीक्षण किया करते थे।

इसी भ्रमण के दौरान एक विशेष घटना घटी। राजा साहेब घोड़ा गाड़ी में चामराजनगर से लौट रहे थे। मैसूर से छः मील दूर कड़कोल ग्राम के निकट "छूट" की जोरदार आवाज हुई। उस दिन भी खास सवारी का चालक गोरा ब्राउन ही गाड़ी चला रहा था। राजा ने पूछा कि आवाज कैसी? ब्राउन ने उत्तर दिया, "हुजूर! कुछ नहीं।" गाड़ी मैसूर महल के द्वार पर पहुंची। उसके रुकते समय ब्राउन नीचे कूद पड़ा और गाड़ी के अगले पहिये को पकड़कर खड़ा हो गया। राजा गाड़ी से उतरे, ब्राउन की ओर मुड़कर बोले : पहिये को पकड़कर क्यों खड़े हुए हो?

ब्राउन : बंदा परवर, धुड़ी के छूट जाने से पहिया टूट रहा है। गाड़ी के गिर पड़ने के डर से आपके उतरने तक पहिये को पकड़ रखा है।

राजा : धुड़ी कब छूटी?

ब्राउन : कड़कोल के पास। रास्ते में उसी की आवाज हुई।

राजा : अरे, पहिया टूट रहा है। गाड़ी नहीं गिरी, यह आश्चर्य की बात है। गाड़ी गिर पड़ती तो हाथ-पैर टूटते, जान चली जाती। कैसा खतरा टल गया!

ब्राउन : हुजूर! पहिये के टूटने पर भी गाड़ी को गिरने से बचाकर चलाना, चलानेवाले के हुनर पर टिका है।

राजा : हम खुश हैं। फिर भी गाड़ी को रोकना चाहिए था। गिरने से तो बच सकते थे।

ब्राउन : हुजूर, गाड़ी रुकती तो खतरा बढ़ता। दूसरी गाड़ी के पहुंचने तक आपको वहां रुकना पड़ता। सांझ हो चली थी। अंधेरा था, बादल घिरने लगे थे। इन सबका ख्याल करके गाड़ी को सावधानी से चलाया ताकि आपको सही-सलामत यहां पहुंचा सकूं। मुझे माफ कर दीजिए।

राजा : ब्राउन! तुमने जो उपकार किया है उसके लिए क्या दें? आज तुमने हमारे प्राणों की रक्षा कर दी! कितनी बड़ी बात है?

इस तरह राजा साहब बहुत खुश हुए, ब्राउन को बख्शीश दी। हुक्म हुआ, "ब्राउन को भविष्य में कोई काम करने की जरूरत नहीं। वह हमारे निजी अस्तबल की निगरानी करके वेतन पाते रहें।"

मंदिर निर्माण के इस कार्य के सुचारु रूप से संपन्न होने के लिए स्थानीय राजस्व अधिकारी आमिल सूबेदार की श्रद्धा भी आवश्यक होती है। इसलिए वहां के आमिल मारमणराय को चामराजनगर के चामराजेश्वर मंदिर के निर्माण-कार्य पर श्रद्धापूर्वक निगरानी रखके समय-समय पर निवेदन करने का हुक्म हुआ था। आमिल भी दूसरे कामकाज छोड़कर

मंदिर निर्माण-कार्य का श्रद्धापूर्वक निरीक्षण करता था। इस कारण आमिल पर राजा साहेब की विशेष कृपा थी। चामराजनगर पहुंचने पर हर काम के लिए आमिल मारमणराय को बुला भेजते थे। जब-जब राजा बुलाते तब-तब यह आमिल दरबार में उपस्थित हो जाता। वह कभी पगड़ी को उलटा पहनता, कभी पोशाक को। कभी बेढंग से धोती पहनता ; भोला अनजान चेहरा बनाता, लपक-लपक कर चलता, बुराई से भयभीत होने का स्वांग भरता ; बुलावा मिलते ही दौड़कर आने का अहसास दिलाता और झुक-झुक कर सलाम करता ; राजा साहब के मुंह से निकले हर शब्द को सराहता, "महास्वामी! आज्ञा का पालन किया है। जो चाहें क्षण भर में तैयार करवा दूंगा। क्या शक है? ... बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! क्या आदेश है? ... हो जायेगा, हो जायेगा।" इस तरह मौके-बेमौके राजा की तारीफ करता। उसके इस नाटक से प्रभावित होकर राजा यह मान बैठे कि यह रमणय्या भोला-भाला है, अच्छा है और राज्य का काम-काज श्रद्धा से करता है। राजा का उस पर स्नेह था और उन्होंने उसे एक लंबे अरसे से उसी ताल्लुके में रहने दिया था।

राज-कृपा प्राप्त करके आमिल ने सोचा कि उसकी आड़ में वह जो चाहे कर सकता है। इतना ही नहीं, उस आमिल की तारीफ और भी थी। इसके चेले चार दलाल थे जो उसके लिए सौदा पटाते थे। इनके जरिए हर मामले में रिश्वत हाथ लगती थी। धनी लोगों के फंसने पर इस आमिल सूबेदार की थैली भर जाती थी। खलिहान के दिनों में इसके नौकर गावों पर टूट पड़ते, मुखिया के जरिए किसानों से मनमाना अनाज वसूल करते और पयाल उठा लाते। इन सबकी बिक्री होती और रकम से सूबेदार की थैली भरती। किसी भी किसान से मिलता तो आमिल बोल उठता, "क्यों महतो! हमारे यहां कल श्राद्ध है, जितना हो सके साग-सब्जी और केले के पत्ते पहुंचाना।" इस तरह मिले साग-तरकारी से घर भरा पड़ा रहता। सरकारी नौकर इन्हें बेचकर सूबेदारनी को पैसे देते। गांव पहुंचते तो सूबेदार किसानों के घर से दस गुना रसद मंगाता और उसे गाड़ियों में भर-भर कर अपने घर रवाना करता। बजाज की दूकानों से मनपसंद कपड़े मंगाता और पहनता। डर के मारे व्यापारी कीमत मांगने से भी कतराते थे। अकेले गांव जाते तो आमिल की काम-लीला निराली होती, बरदाश्त के बाहर होती। कस्बे के कर्मचारी किसानों को लूट - लूटकर मालामाल हो चले थे। पर आमिल की आमदनी बहुत थी, इसलिए वे सब आमिल से अंदर ही अंदर जलते थे। फिर भी, यह सब होते हुए कोई राजाश्रित आमिल के खिलाफ मुंह नहीं खोलता था। राख ढंके अंगारे की भांति भीतर ही भीतर सब के सब कुढ़ते थे।

इस आग के भभक उठने का समय आया। गांव में दो जाति के काश्तकार थे, नोनिया और परिवारिया। विवाह के अवसर पर निकलनेवाली शोभा-यात्रा को लेकर दोनों जातियों में लंबे अरसे से विवाद चल रहा था। ऐसी स्थिति में एक धनवान परिवारिया के घर में उसके पुत्र का विवाह हुआ। शादी में आसपास के सारे परिवारिये जमा हुए थे। सरकारी अधिकारियों को भी निमंत्रण था। सूबेदार, किलेदार, सरिश्ता आदि सभी की दावत थी। इन

सबको भेंट चढ़ाई गई। विवाह के अवसर पर वर-वधू का जुलूस निकालने के लिए उस घनिक परिवारिये ने सूबेदार जी को अर्जी दी। उसी दिन रात को सूबेदार के यहां पहुंचकर दलालों ने एक सौ स्वर्ण मुहरें सूबेदारनी को चढ़ायीं। पर नोनिया लोगों को इसका सुराग मिल गया। उन लोगों ने तकरारी अर्जी पेश की। दरख्वास्त में आपत्ति उठायी थी कि परिवारिये केवल नौ "पण" के हैं और इसलिए अठारह पण के नोनिया लोगों के बसे हुए भरे बाजार में वे पालकी जुलूस नहीं निकाल सकते। यह परंपरा-विरोधी है। अतः उन्हें लैसन्स नहीं मिलना चाहिए। इस तकरार से सूबेदार जी खुश हो गये। फिर से बिचौलिये बीच रात में सूबेदार के यहां पहुंचे। छज्जे पर बातचीत हो रही थी। ऐसा सुनकर सूबेदारनी भी वहां पहुंच गई। नोनिया समाज की ओर से एक सौ स्वर्णमुद्राओं की बात चली।

सूबेदार : वाह, भाई, यह कैसे संभव है? कहते हो परपंरा नहीं। क्या नोनिया परिवार से तकरार की परंपरा है?

नोनिये : हुजूर, ऐसी बात नहीं। परिवारिये का जुलूस पहले कभी निकला होता, तो हम तभी उसी वक्त तकरार करते। तब तकरार भी प्रथा बन जाती।

सूबेदार : यदि आपकी तकरार के बारे में परिवारिये लोग जानते, तो हो सकता है कि वे अर्जी देते। पर उन्हें इसकी बू तक नहीं है। है न? इसीलिए उन्होंने दरख्वास्त नहीं दी। परंपरा के पालन की बात भी नहीं उठी।

नोनिये : परिवारियों की अर्जी, प्रथा के मुताबिक है कि नहीं ; इसकी चर्चा नहीं चल रही, हुजूर। उनके जुलूस की प्रथा की चर्चा है।

सूबेदार : यह सरकार पर निर्भर है। क्या तुम लोग सारे कानून जानते हो?

नोनिये : हम क्या जानें हुजूर? कुछ भी हो, हमारी इज्जत रखिए। सौ अशर्फी चढ़ाने के लिए हम तैयार हैं।

सूबेदारिन : परिवारियों ने एक सौ बीस मुहरें भेंट करने की बात कही है। तुम डेढ़ सौ अशर्फी चढ़ाओ और लैसन लो।

नोनिये : हमें लैसन नहीं चाहिए, मां जी। परिवारियों को लैसन न मिले, बस। यही हमारी प्रार्थना है। हम भी एक सौ बीस मुहर पेश करेंगे।

इस समझौते के बाद जब नोनिये चले गये तो सूबेदारिन ने पति को आड़े हाथों लिया, "मेरा कहना मान वे डेढ़ सौ अशर्फी देने को तैयार थे। एक सौ बीस के लिए राजी होकर सब कुछ बिगाड़ दिया आपने। हर दफा ऐसा ही करें, तो मैं कहां जाऊं?" इस तरह चीख-चिल्लाकर वह चलने को हुई। सूबेदार ने समझाया, "रहने दो जी। मैं अगली बार खींच लूंगा।"

परंपरा के अनुसार जुलूस निकालने के लिए परिवारियों को लाइसेंस मिल गया। रिश्वत में धन लूटना मारमणराय अच्छी तरह जानता था, पर लाइसेंस लिखने में उसने होशियारी नहीं दिखायी। उसमें मुंशी और कारिन्दों का ही ज्यादा हाथ रहा। इसके लिए उन्हें सोने और

चांदी के सिक्के दिये गये। इन रिश्वतखोरों के प्रति परिवारिया समाज बहुत कृतज्ञ था। नोनियों ने इस भेद का पता लगा लिया। परिवारियों के जुलूस के स्वागत के लिए तैयारी कर ली। सबकी आंखें बचाकर उन्होंने चुपके से जंगल में मिलकर आक्रमण का कार्यक्रम बनाया।

परिवारिया लोग बहुत खुश थे। सूबेदार की कृपा से इनका काम बन गया था। वे शोभा यात्रा की सारी व्यवस्था जमकर करने लगे। निश्चय हुआ कि चामराजनगर के सारे मंदिरों में पूजा करवा के, मुख्यमार्गों में जुलूस निकालकर रात के बारह बजे तक घर लौटना है। वहां वर-वधू की नजर उतारकर आरती उतारी जाये। अब उनके हाथ कौन रोके? सूबेदार की कृपा है। अन्य अधिकारी वश में हैं। किल्लेदार तो परिवारिया रूपी महा-अरण्य में मत्तगयंद की भांति झूम रहे हैं। कई परिवारिये रमणियों के साथ मदहोश हैं। परिवारिया समाज को अब कौन रोके?

सूबेदार घर पर ही रहा, पर किल्लेदार जी अपनी सेना के साथ शोभा यात्रा की देख-रेख करने घोड़े पर चढ़कर निकल पड़े। आस-पास का परिवारिया समाज चामराजनगर में आ जमा था। सबसे आगे सींग, डफली, उसके पीछे-नगाड़े और उसके भी पीछे दो वाद्यवृंद। पीछे-पीछे बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजे पुरुषों की टोली, अपनी सेना से आवृत घोड़े पर चल रहे किल्लेदार सालार खान साहेब और उनके पीछे वर-वधू की फूलों से सजी पालकी। उसके पीछे नाना वस्त्रालंकार भूषित स्त्रियां जो कलश, फल तांबूल, फूल, मंगलद्रव्य आदि साथ लेकर, गीत गाती हुई चल रही थीं। अंत में साधारण वस्त्र पहने, कंबल ओढ़े चल रहा परिवारिया पुरुष समाज—ये सब मिलकर एक अनगढ़ सौंदर्य की सृष्टि कर रहे थे। चारों ओर गेंदे के फूल की खुशबू, रेंड़ी के तेल की बू, प्याज-लहसुन की दुर्गंध, सबको सराबोर करनेवाले पसीने की बदबू, ये सब मिलकर लोगों को नाक सिकोड़ने पर मजबूर कर रही थीं।

जुलूस सूबेदार के घर को पार कर बाजार तक पहुंचा ही था कि उस पर दस-बीस पत्थर आ गिरे। लोग घबरा उठे। सेना की टुकड़ी पत्थरबाजों की तलाश में यहां-वहां झांकने लगी। इधर पत्थरों का बरसना प्रारंभ हो गया। बीच-बीच में जूते भी गिर रहे थे। उसी समय चारों ओर से लंबी-लंबी लाठियां उठाये युवकों के दल जुलूस पर टूट पड़े। किल्लेदार के घोड़े पर वार हुआ। उसकी टांग टूट गयी। सालार खान नीचे आ गिरा। उस पर लाठियां बरसीं। उसकी भी एक टांग टूट गई। मुंह पर जोरदार चोट लगी। खून बहने लगा। भीड़ में किसी ने उसको खींच-कर नाले में फेंक दिया। खान साहब बेहोश हो गये। सेना के जवानों में कई नोनिये थे, तो कई परिवारिये। वे अपने-अपने दलों में जा मिले। रक्षक भक्षक बन गये। ज्यादातर परिवारिया दल के लोग हताश हुए। कई मरे, कई होश खो बैठे। वर-वधू लापता थे। तुरंत दुकानों के दरवाजे बंद हुए। लोगों ने घरों में घुसकर द्वार बंद किये। शोरगुल सुनकर सूबेदार घर के चबूतरे पर पधारे। नोनियों का एक दल वहां पहुंचा। लोग जोर से चिल्लाये कि परिवारियों को लैसन कैसे दी? सूबेदार भी चिल्लाया, "हुकूमत के रास्ते हैं। जो

चाहे गुजर सकता है। पूछनेवाले तुम कौन होते हो?" उन सब को काली कोठरी में बंद कर देने का हुक्म दिया। तिस पर नोनिये चिल्लाने लगे, "हम खुद जायेंगे। आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं। जो चाहे जो जाये, हम भी देख लेंगे।" वे सब काली कोठरी, मच्छरघर, तहखाने आदि की ओर झपट पड़े। तहसील-कार्यालय इन लोगों से भर गया। फिर भी लोग घुसते रहे। कार्यालय के महाद्वार पर ताला पड़ा। बाकी भीड़ सूबेदार के निवास पर टूट पड़ी। वे घर के अंदर भागे, दरवाजे-खिड़की बंद करवाये और छज्जे पर जा दुबके। लोग बाहर से ईंट, पत्थर, जूते आदि सूबेदार के घर पर बरसा रहे थे। घोंसलों से बिखरे पक्षियों की भांति जूते हवा में उड़ रहे थे। छज्जे पर की खिड़की से ईंट, पत्थर, गोबर आदि सूबेदार पर आ गिरे। नोनियां महिलाएं आमिल के घर के सामने इकट्ठी होकर उसे जी भर गालियां सुनाने लगीं। साड़ी की चुनन को हाथ से ऊपर नीचे करती हुई उन स्त्रियों ने सूबेदार के घर के सामने भद्दा प्रदर्शन किया। गांव थर्रा उठा। तीन दिन तक किसी ने दरवाजा नहीं खोला। अंत में मैसूर से पदाति और रिसाला सेना आई और बगावत को दबाया। जनता धिक्कारने लगी कि सरकारी कर्मचारियों के अविवेक और स्वार्थ से यह सब हुआ। हाकिमों का घोर अपमान हुआ। लोगों ने समझा कि अब आमिल तबाह हो जायेगा।

बगावत की खबर राजा तक पहुंची। यह सूबेदार राजा का कृपापोषित था, हाकिम डर रहे थे। उन्होंने बताया कि इसमें आमिल का कोई दोष नहीं है। सुनते हैं कि राजा ने कहा, "रमणैय्या अबोध व्यक्ति है। इसके मूल में वह हो नहीं सकता। यह गुण्डों का काम है।" कई कुतंत्री दरबारियों से इसका पता चला। तब से मारमणराय की काली करतूतें बढ़ती ही गईं और विभिन्न रूपों में प्रकट होने लगीं। इसका परिणाम आगे देखने को मिलेगा।

4

उधर सदाशिव दीक्षित मां पार्वतम्मा और पुत्र महादेव के साथ संजवाडी में बसकर श्वसुर नीलकंठ जोइस की जमीन-जायदाद का सुयोग्य संचालन करते हुए गौरवपूर्ण जीवन बिता रहा था। इसी बीच तिम्मम्मा ऋतुमती हुई। उसके मन में महादेव के प्रति विमाताओं जैसी ईर्ष्या न थी। लड़का गोरा था और देखने में सुंदर। वह उज्ज्वल चेहरेवाला सर्वांग सुंदर बालक था। उसकी चोटी लंबी थी और मुंह शांत। जो कोई देखता, कहता कि लड़का धीमान है और सार्थक जीवन के सारे लक्षण उसमें मौजूद हैं। उसके मुंह पर इतना तेज बरसता था कि दर्शक बच्चे की ओर एक झांकी के लिए तरस उठते। वह जैसा रूपवान था वैसा ही गुणवान भी। बड़ों का आज्ञाधारक, खाने को जितना मिलता उसी से संतुष्ट, और ज्यादा के लिए जिद नहीं करनेवाला। बाल-सहज शरारत करता, पर मना करने पर चुप हो जाता। बचपन से महादेव में ये गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। तिम्मम्मा बालक को बहुत चाहती थी। वह बालक को गोद में उठाती, और खिलाती मानो ये सब उसकी दिनचर्या के कर्तव्य हैं। कारणवश बच्चा रोता तो उसे चुप कराके ही सांस लेती, तब तक उसे सांत्वना नहीं मिलती। इस प्रेम में, बच्चों के बीच पाया जानेवाला आपसी लगाव था, सुंदरता और सुगुणों के प्रति सहज उपजनेवाला आकर्षण था; सगे संबंधियों के बीच सहज वर्तमान प्रीति और ममता थी। वह सब कुछ इस बच्चे से बांटकर ही खाती। भोजन भी बच्चे को खिलाने के बाद ही करती। 'पालने पर बच्चा, पूजने पर भगवान, जलाने पर चूल्हा, जुड़ने पर पति और बसाने पर घर' की कहावत को चरितार्थ कर रही थी। इससे बालक को भी उस पर अपार प्रीति थी। 'मौसी, मौसी' पुकारते हुए वह उसी के पीछे-पीछे घूमता था।

महादेव का अक्षराभ्यास हुआ। गांव में नारप्पय्या नामक अध्यापक शाला चलाता था। महादेव को उस शाला में भेजा गया। नारप्पय्या महाराष्ट्री का भी पंडित था। जैसे आज अंग्रेजी वैसे उस जमाने में महाराष्ट्री या हिन्दवी राजभाषा कहलाती थी। शासन का पत्राचार हिन्दवी में ही होता था। हिन्दवी जाननेवालों को सरकार में आसानी से नौकरी मिल जाती थी। पुणे के संस्थानाधीश्वर श्रीमन्त बाजीराव ने अनेक राज्यों को जीतकर वहां अपनी सेना की टुकड़ियों को रखा था। उन राज्यों में भी अपने शासनतंत्र का विस्तार किया। बड़े नवाब कहलानेवाले हैदर ने अनेक मराठा प्रांतों को जीता था, समग्र मैसूर राज्य पर अधिकार जमाया था। इन प्रांतों में वह अपने ही अधिकारियों को नियुक्त करना चाहता था। लेखा-जोखा करने में मराठे बहुत चतुर माने जाते थे। अतः हैदर अली ने अपने राज्य के

अनेक पदों पर उन्हीं को नियुक्त किया। वे सरकारी कागज-पत्र हिन्दवी में ही रखते थे। टीपू सुल्तान के जमाने में और कृष्णराज ओडेयर के शासनकाल में इस भाषा की और तरक्की हुई। इसलिए इसे राजभाषा कहते थे। इसे पढ़ानेवाले अध्यापक पन्तोजी कहलाते थे। कन्नड़ के अध्यापकों की अपेक्षा इनका अधिक सम्मान था। इनके पास ज्यादा विद्यार्थी आते थे। इनकी आमदनी भी ज्यादा थी। यह पढ़ाने का स्थान कहलाता था। महादेव का ताराबल देखकर एक शुभ दिन में उसका तैल अभ्यंगन कराके प्रातः दस बजे के बाद, गुरु के ग्यारहवें स्थान में रहते, उसका अक्षराभ्यास संपन्न हुआ। दोपहर ब्राह्मणों और सुमंगलियों को भोज दिया गया और शाम को आरती उतार कर स्त्रियों का आंचल भरा गया। महादेव सवेरे-शाम शाला जाता और अध्यापक का विधेय रहकर पाठ सीखता। "मार पहले, पढ़ाई पीछे" का सिद्धांतवाला अध्यापक बच्चों को मार-मार कर, डर के बूते पाठ पढ़ाता और उसके हाथ से महादेव भी कभी-कभार मार खाता।

पन्तोजी से मार खाकर महादेव की आंखें सहज ही भर आती थीं पर दूसरे बच्चों को पिटते देखकर वह रो पड़ता था। उसे चुप कराना आसान न था। एक दिन सदाशिव दीक्षित ने लड़के को घर में ही देखकर पूछा, क्यों बेटा, आज शाला नहीं जाना है?

महादेव : पन्त जी मारते हैं।

सदाशिव : तुम्हें मारा? कब? क्यों?

महादेव : मुझे मारें तो कोई बात नहीं ; बाबा! वे सभी लड़कों को पीटते हैं। उन बच्चों को रोते मैं देख नहीं सकता, मुझे भी रोना आता है।

सदाशिव : भूल करे तो मार पड़ेगी ही!

महादेव : पाठ पढ़ने पर मारते हैं, नहीं पढ़ने पर भी मारते हैं। शरारत करने पर पीटते हैं और नहीं करने पर भी पीटते हैं।

सदाशिव : वह कैसे?

महादेव : पूछते हैं तो सुनिए, बताता हूं। किसी लड़के ने कोई विषय नहीं समझा और पन्त जी से पूछा तो वह खूब पिटा। गुरु जी विषय को स्पष्ट भी नहीं करते हैं। लड़के शोर मचायें तो चबूतरे से कूदकर जो कोई मिले, उसी को पीटते हैं। जिससे भूल नहीं हुई हो, उसे भी मारते हैं।

सदाशिव : यदि लड़का कहे कि वह शरारती नहीं है?

महादेव : ऐसा कहने पर उसकी खैर नहीं। छड़ी के टूट जाने तक उसे पीटते हैं। तिस पर मूठ से सिर पर मार-मार कर कूबड़ बना डालते हैं। फिर रोष से लौटकर कुहनी से सिर और पीठ पर मारते हैं। कान पकड़कर ऊपर उठाते हैं। चिकौटियों को नहीं गिनें तो अच्छा है। उस आर्तनाद को मैं नहीं सुन सकता।

सदाशिव : बस, इतनी-सी बात है!

महादेव : और सुनिए, मैं सुनाता हूं। दोपहर को आते ही वे चबूतरे पर बिछी

चटाई पर बैठकर ऊंघने लगते हैं। बाद में खर्राटे मारकर सो जाते हैं। तब लड़के कानाफूसी करते रहते हैं। वर्ग में सिद्धा नामक एक लड़का है। यह हर दिन गुरु जी को सवेरे पैसे भर नस और दोपहर को पान-सुपारी ला देता है। वह चाहे जो करे पंत जी उसे नहीं मारते। लड़कों को इसे खिलाते रहना चाहिए, वरना वह पन्त जी से झूठी शिकायत करता है। वह खुद चिउंटी काटके चुगली खाता है कि लड़कों ने चिउंटी काटी। इस तरह की बहुत-सी हरकतें वह करता रहता है। खामख्वाह चिल्लाता है कि इसने थूका, उसने गाली दी। तब पन्त जी उनींदी आंखों से सब को चार छड़ी लगाते हैं। सिद्धा बच निकलता है। वे चुगलखोरों को नहीं मारते। बाकी सब को पीटते हैं।

सदाशिव : क्या, तुम्हें भी इस तरह पीटा है?

महादेव : हर दिन पीटते हैं। दादी कहती हैं कि सवेरे उठकर बिल्ली का मुंह नहीं देखा कर, देखोगे तो पन्त जी से पिटोगे। मैं बिल्ली का मुंह नहीं देखता फिर भी मार खाता हूं। रटने के गृहकार्य को जांचते वक्त शून्य पानेवाले का हाल मत पूछिए। परसों सवेरे सबसे पहले मैं शाला गया था, बाद में सब लड़के आये। सिद्धा को मैंने चिउड़ा (पोहा) नहीं दिया, इसलिए सिद्धा झूठ-मूठ चिल्ला उठा कि 'महदेवा पन्द्रहवां है' फिर क्या था मेरी तहकीकात किये बिना मुझे पन्द्रह बार जोर की मार पड़ी। मैं अब हाथ से खा नहीं सकता।

सदाशिव : मैं उन्हें समझाऊंगा कि वे यों नहीं मारें। तुम निश्चिंत रहो।

महादेव : कल से मैं घर में ही पढ़ूंगा। पाठ पढ़कर तुम्हें दिखाऊंगा।

सदाशिव : ऐसा नहीं करते, बेटा! शाला जाना ही होगा।

महादेव : वहां मैं रो पड़ता हूं। मुझे मारे तो कोई चिंता नहीं, छोटे बच्चों पर ज्यादती करते हैं। भूल हुई नहीं कि छात्रों को कमान चढ़ाकर टांगों पर मारते हैं। लाठी से लटकाकर नीचे से मिर्ची का धुंआ लगाते हैं। मुरगा बनाकर तख्त, पत्थर और जो मिले उसे चढ़ाते हैं। उन बच्चों को रोते देखकर मुझे भी रोना आता है। मुझे रोते देखकर पन्त जी पूछते हैं, "तू क्यों रोता है रे?" और मुझे बहुत मारते हैं। बुरी गालियां बकते हैं।

सदाशिव : मैं पन्त जी से कहूंगा कि वे तुम्हें नहीं मारें। आज तुम शाला चलो।

पिता पुत्र की इस बातचीत के दौरान ही शाला से दो लड़के आये और बोले, "महादेव! पढ़ने क्यों नहीं आया? पन्त जी बुला रहे हैं। चलो, खूब मरम्मत होगी तुम्हारी।" पिता का मुंह देखते हुए बिलख-बिलख कर महादेव रोने लगा। सदाशिव ने मन ही मन सोचा, "आह! यह पन्त बच्चों को क्यों मारता है? मारने से कोई कुछ सीखेगा क्या? बच्चे और उजड्ड हो जायेंगे। मार के भय से सीखा हुआ भी भूल जाते हैं।" लड़कों से कहा,"लड़को! पन्त जी से कहना

कि हमारे महादेव को नहीं मारें। बताना कि हमने कहा है।" इस संदेश के साथ उन्होंने महादेव को शाला भेजा।

पन्त ने शाला के दरवाजे पर ही पतली लंबी छड़ी हाथ में लिये खड़े-खड़े दूर से ही लड़कों के साथ आ रहे महादेव को देखा। वह चीख उठा, "उसे खींच के लाओ न! कितनी देर कर रहे हो? वह महादेव को मनमाना मारने लगा! कहा "तुम्हें गड्ढा खोदकर साबूत गाड़ दूंगा।" महादेव के साथ आये लड़कों ने तब संदेश सुनाया, "पन्त जी! महादेव के पिता ने कहा है कि आप उसे न मारें।" इसे सुनकर नारप्पय्या ने कहा, "सिफारिश लाता है सिफारिश, क्यों रे?" और, महादेव को और पीटा। मार न सहकर तड़पते हुए महादेव को देखकर लड़के आपस में कानाफूसी करने लगे, "ऐसे अच्छे लड़के को पन्त जी बिना कारण क्यों मारते हैं।" उन्हें खुद रुलाई आई। वे और भी कानाफूसी करते रहे। सारे दिन पन्त का गुस्सा बना रहा। दोपहर पाटी पर लिखनेवाले लड़कों की अंगुलियों की पोर पर मार पड़ी। कागज पर स्याही से लिखनेवालों को कलम से और रेत पर लिखनेवाले छोटे बच्चों की पीठ पर, छड़ी के टूटने तक पिटाई हुई। उस दिन सभी लड़कों की खूब मरम्मत हुई, सभी के शरीर पर बमड़े निकल आये।

प्रदोष का समय आया। यथावत् संध्या को सरस्वती पूजा आदि संपन्न हुई। पन्त को कागज की किताब पढ़नेवाले शिष्यों ने चार पै, पाटी लिखनेवालों ने एक-एक पै तथा रेत पर लिखनेवालों ने दो-दो पै चढ़ाकर सरस्वती वंदना की। पन्त उस शाम को बहुत खुश था। तब शिष्यों ने कहा, "पन्त जी! कल से तीन दिन शाला की छुट्टी है। शाला कचड़े से भर गई है। इन तीन दिनों में हम झाड़-बुहारकर लीप-पोत लेंगे।" नारप्पय्या ने स्वीकार किया और अपने घर गया।

देखने में सुंदर, बुद्धि से तीक्ष्ण व गुण से सात्विक महादेव की पिटाई लड़कों के बीच घर के भीतर और बाहर चर्चा का विषय बन गयी। सहज ही लड़कों ने पन्त जी द्वारा अन्य बच्चों की पिटाई की भी याद की। यह सहज ही था। इस तरह बार-बार पिटने वाले लड़कों में बसवा भी एक था। वह अठारह साल का था। वह अक्सर शाला से गैरहाजिर रहता था, इसलिए उसके पैर में जंजीर से इमली का काठ लगाया गया था। वह नटखटों का नायक था। हर शरारत के पीछे वह रहता था। पन्त जी से बार-बार सजा भुगत चुका था। वह उजड्ड बन गया था। उसने दूसरे दंडितों से कहा, "यदि तुम लोग मुझे काठ और जंजीर से छुड़ा दोगे तो मैं ऐसा उपाय करूंगा कि हम सब इस पन्त से मुक्त हो जायेंगे।" बड़े लड़कों ने मान लिया। गेंद खेलने के बहाने सब खेतों में पहुंचे। वहां जंजीर की कड़ी को काटकर तोड़ दिया, टांग से काठ को हटा दिया। बसवा अब स्वतंत्र जीव था। वह टोली का नायक बना। सबने मिलकर शाला को बुहारा, लीपा-पोता। रंगोली सजाई। पन्त जी के बैठने के लिए एक बड़ा चौकोर चबूतरा था। बगल की दीवार काली पड़ गई थी, पन्त जी नसवार का नेटा जो उस पर लगाता था। जिस चटाई पर पन्त बैठता था वह नेटे से पुत गई थी। लड़कों ने चटाई बदल दी ; नई चटाई लगाई और दीवार पर चूना चढ़ाया।

त्रयोदशी के दिन पन्त ने महादेव को ऐसा पीटा था कि उसके शरीर पर छाले पड़ गये थे और घावों से खून रिस रहा था। बिलख-बिलख कर रोते हुए बच्चा घर लौटा। उसकी हालत देखकर दादी पार्वतम्मा रो पड़ी। बच्चे को प्यार और जतन से पालने वाली तिम्मम्मा का दुःख देखा नहीं जाता था। बिन मां के इस गुणी और सुंदर बच्चे का लालन-पालन करनेवाले सहज ही उस पर वात्सल्य बरसाते थे। उसी समय सदाशिव दीक्षित घर लौटा, बच्चे के घावों को देखा और उसकी दयनीय स्थिति पर मन ही मन तड़पने लगा। बच्चे की तरफदारी करके बोलने पर उसके मन में अध्यापक के प्रति श्रद्धा घटने की और उपेक्षा जगने की संभावना थी ; ऐसी स्थिति में बच्चे पन्त का पढ़ाया कुछ भी नहीं सीखेंगे। इस भय से काया वाचा पुत्र की ओर न झुककर निष्पक्ष रहनेवाले सदाशिव दीक्षित के मुंह से भी अध्यापक के प्रति निंदात्मक उद्‌गार निकले। बड़े प्यार दुलार से पाले गये बच्चे की मनोव्यथा से मन ही मन दुखी होकर उसने बालक की शुश्रूषा की। घावों की पीडा के कारण चतुर्दशी से तीन दिन तक घर में ही खेल में मगन बच्चे की देखभाल घर-परिवार के सभी लोगों ने की। इस अत्याचार के प्रति किट्टा भी चिल्लाने लगा। "तिम्मू! बच्चे को उस मनहूस शाला में मत भेजो, भले ही जीजा जी लाख कहें। उस लंगडे मास्टर को सबक सिखा दूंगा, सबक! मुझे भी इसी तरह पीटता था, मैं शाला से रफूचक्कर हो गया। हमारे बच्चे को मारनेवाला यह कौन होता है? हम क्या इसके बच्चों को पीटते हैं? यह कब से इतना बड़ा बन गया? इसका बड़प्पन जैसे मैं नहीं जानता। उस दिन मांगने पर भी एक चुटकी नासा नहीं दी! देता तो इसके बाप का कुछ जाता? जीजा जी, इस मास्टर की शाला में महादेव को नहीं भेजना, मैं उसे घर में ही सब कुछ पढ़ा लूंगा।' इसी तरह वह कटर-कटर करता रहा। सदाशिव दीक्षित ने उसे शांत करवाया, ऐसा समझाया जिससे बच्चे का मन खुश भी हो और पन्त के प्रति उसका गौरव भी न घटे। छुट्टियां बीत गयीं। दूज के दिन प्रातः महादेव का मुंह धोकर, खिलापिलाकर, बस्ता थमाकर सदाशिव ने उसे फुसलाकर कहा, "तुम शाला चलो। मैं भी तुम्हारे पीछे आऊंगा। पन्त जी से कहूंगा कि तुम्हें न मारें।" महादेव शाला चला। उसके शाला पहुंचने से पहले ही हर दिन देरी से आनेवाले लड़के आ गये थे। महादेव भी उन लोगों के साथ मिल गया। उन लोगों ने महादेव को सांत्वना दी, उसके प्रति सहानुभूति दिखाई। शाला में एक भी लड़का नहीं बैठा था, सब जहां-तहां खड़े रहे। बसवा जैसे बड़े लड़के आपस में फुसफुस कर रहे थे।

उसी समय पन्त का आगमन हुआ। उस दिन नारप्पय्या एक लंबी छड़ हिलाते हुए आया। "क्यों रे! बैठकर पढ़ना नहीं? क्यों खड़े हैं?" गरजते हुए पन्त हाथ लगे एक-दो छात्रों की छड़ी-सेवा करके बैठने के लिए अपने आसन की ओर बढ़ा और चबूतरे पर चढ़ा। चटाई और नई दीवारों पर सफेदी चढ़ी थी। पन्त खुश हुआ। "हर दिन ऐसी सफाई क्यों नहीं करते" कहते हुए अपने आसन पर बैठा। उस समय उस प्राणी पर जो विपत्ति टूट पड़ी उसका वर्णन कौन करे? अध्यापक के बैठते ही बिछी हुई नई चटाई धंस गई। नारप्पय्या के मुंह से एक चीख निकल पड़ी। दूर खड़े बड़े लड़के बिना बोले भाग निकले। शाला पहुंचते ही

गुरु जी के भय से एक साथ बैठकर अध्ययन में लगे महादेव आदि चार-छः लड़के चीख सुनकर अध्यापक के चबूतरे की ओर घबराहट से देखने लगे। पन्त की आंखें लटक गई थीं, उसका मुंह खुला था। उसे गड्ढे में गिरा देखकर डर के मारे ये बच्चे अपने-अपने घर की ओर भाग गये। शाला में कोई न बचा। महादेव दौड़कर घर आया।

प्रातर्विधि समाप्त कर पूजागृह में आराधना के लिए चंदन घिसने में लगे अपने पिता के समक्ष खड़े होकर वह रोने लगा। उसके पीछे-पीछे घर के सब लोग दौड़ आये। उनका ख्याल था कि मास्टर ने बच्चे को फिर से मारा है और इसलिए बच्चा घबराकर घर भाग आया है। वे पूछ रहे थे, "क्यों रे, क्या हुआ? पन्त ने पीटा है?" बच्चा किसी से नहीं बोला, वह चुपचाप रोता खड़ा रहा। बेटे को देखकर दीक्षित ने पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है? अध्यापक ने मारा है? लाख समझाने पर भी वह अपनी इस हरकत से बाज नहीं आता न! महादेव ने कहा, "मारने की बात नहीं! मास्टर जी चबूतरे पर के गड्ढे में गिर गये हैं। एक बार चीख उठे, लड़के सब भाग निकले। हम तीन लड़के चबूतरे के पास पहुंचे और देखा। हमें डर लगा, भाग आये। बेचारे मास्टर जी! यों ही पड़े हैं। चलो बाबा, अभी चलो। आकर देखो न।" यह सुनकर दीक्षित जी ने कहा, "हाय-हाय! न जाने उस पर क्या बीता? अकेला है।" अपना काम-काज छोड़कर शाला पहुंचा। वहां दरवाजे पर दो-चार पड़ोसी शाला के फाटक पर खड़े होकर पन्त को गाली दे रहे थे। "अच्छा हुआ! बच्चों को खूब सताता था, आज अपने किये का फल भुगत रहा है!" सदाशिव के साथ वे लोग भी अंदर चले। कैसा दर्दनाक था अंदर का दृश्य! नारप्पय्या की आंखें ऊपर की ओर अटक गई थीं, वह बेहोश हो गया था। ताड़ की चटाई के साथ पन्त कमर तक गड्ढे में धंस गया था। गरदन, कंधे, पीठ, बाजू, हाथ, जांघें और पिंडलियां गड्ढे में थीं, एक ओर सिर ऊपर की ओर उठा था। दूसरी ओर दोनों पांव खड़े थे। मुंह और शरीर पर कोई चूर्ण लगा था और चारों और चूर्ण बिखरा पड़ा था। वह अभी थोड़ा-थोड़ा गिर रहा था। चबूतरे पर बिछाई हुई चटाई के एक कोने पर एक धागा बंधा हुआ था। दूसरी छोर से कपड़े की एक पोटली ठीक पन्त के सिर पर लटक रही थी। चटाई के धंसते ही धागा टूटता और पोटली का मुंह खुलता। उससे चूर्ण का छिड़काव शुरू हो जाता। वह अभी धीरे-धीरे गिर रहा था। नजदीक जाकर देखने से पता चला कि नारप्पय्या के शरीर पर कांटे ही कांटे हैं। चटाई के नीचे कीकर के कांटे बिछे थे। इससे चबूतरे की छोर पर खड़े रहकर भी पंत को ऊपर उठाना कठिन था। गांव में दीक्षित का बड़ा सम्मान था। उसके कहने से पन्द्रह-बीस लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने बड़े जतन से पन्त को ऊपर उठाया, फिर भी वह चेत में नहीं था। कांटे चटाई को भेदकर शरीर में धंस गये थे। इससे चटाई को अलग करना कठिन था। पन्त के रोम-रोम में कांटे चुभे थे। चटाई के निकालने के प्रयास में मांस-पेशियां निकल आने का भय था। उससे एक-एक कांटे को निकालना मुश्किल था। उसे न लिटा सकते थे, न बिठा सकते थे। बड़ी दुविधा थी। सौभाग्य से शरीर के अगले भाग में कांटे नहीं चुभे थे। बेचारे को औंधे मुंह लिटाकर चिमटी से एक-एक करके कांटों को निकालने लगे। दीक्षित ने अध्यापक को पानी पिलाया, कानों में फूंका। तब जाकर उनके

होश आये, आंखें खुलीं। कांटों के निकालने से खून बहने लगा। पीठ पर सबसे ज्यादा कांटे गड़े थे। गुदाद्वार में सेंहुड का एक जबर्दस्त कांटा चुभ गया था। वह हिलडुल नहीं सकता था। वह कांटा जबर्दस्ती निकाला गया। इससे जोर से खून बहने लगा। तब तक उसे उठा-लिटानेवाले और छाती से लगानेवालों को वह बुकनी लग गई थी जिससे जलन और खुजलाहट से वे परेशान हो रहे थे। खुजला-खुजला कर सब के शरीर लाल हो गये। पता लगा कि चटाई के धंसकर धागे के टूटने से बरसनेवाला चूर्ण बिजूटी पत्तों का है। पन्त के शरीर के खून बहनेवाले घावों पर इसके लगने से खुजलाहट थी जिस कारण सारे शरीर में एक ही घाव बनने की संभावना थी। इसलिए बड़े जतन से पन्त की देह पर से यथासंभव चूर्ण को निकाला गया, ठंडे पानी से बुकनी को धोया। बेचारे अध्यापक की पत्नी बच्चा जनने मायके गई थी। घर पर और कोई न था, तो पन्त खुद पकाकर खाता रहा। तीज-त्योहारों पर लोग भोजन करने अपने यहां बुला लेते थे। इसी समय यह आफत आ पड़ी थी। उस पर दया करके चादर की डोली पर सदाशिव दीक्षित, पन्त को अपने घर ले गया।

अध्यापक के चबूतरे के निरीक्षण से पता चला कि वहां एक बड़ा गड्ढा खोदा गया था। उसे बबूल, कीकर, सीज, झरबेरी आदि कांटों से भर दिया गया था। उस प्रांत में अनुपलब्ध सेंहुड़ और कांच के टुकड़े भी सम्मिलित थे। इन सबको गड्ढे से बाहर निकाल कर देखने पर लोहे की कील, टूटी सूइयां भी वहां मिलीं। उस जमाने में कांच और चीनी-मिट्टी के बर्तन व बोतल जहाजों में भर-भर कर विदेशों से नहीं लाते थे। फिर भी आश्चर्य की बात है कि इतना कांच इन्हें मिला कहां से? एकत्रित भीड़ में कई लोगों का कहना था कि सही या गलत हर दिन बच्चों पर जुल्म ढानेवाले पन्त को अच्छा सबक मिला। इस कुकृत्य पर बालकों की निंदा करके उन्हें सबक सिखाने को उतावले कई बालवीर थे जो इस बेचारे पन्त के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते थे। गांववालों में तरह-तरह की बातें हो रही थीं। गड्ढे से कांटों को निकालना दुस्तर था, इसलिए उन्हें आग लगाकर उधर ही जलाकर गड्ढे को पाट दिया गया।

पन्त के गड्ढे में धंसते ही चारों ओर भाग निकलनेवाले लड़कों में से कई तो दो-तीन दिन घर लौटे ही नहीं। कई बालक संध्या को ही लौट आये और कई तो दूसरे दिन सवेरे आये। इन बालकों के माता-पिता अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उस राक्षस-कृत्य की टीका-टिप्पणी करते रहे।

पन्त को घर ले जाकर सदाशिव दीक्षित ने उसकी खूब सेवा की। रोगाणुरोधक द्रव से घाव धोता, मलहम लगाता और चिकित्सा करवाता। घर-परिवार के सारे लोग बिना जुगुप्सा के, पन्त की सेवा-सुश्रूषा में लग गये। फिर भी, पन्त के पूर्ण-रूप से स्वस्थ होने में चार महीनों से अधिक समय लग गया।

5

नोनियों और परिवारियों के बीच हुए दंगे के बारे में पहले बताया जा चुका है। इन दोनों कौमों के बीच का झगड़ा कोई नया नहीं था। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा था। चामराजनगर में इन लोगों ने जो हंगामा खड़ा किया था उसका असर उस गांव तक ही सीमित न था, आसपास के कस्बों और गांवों पर भी पड़ा था। संजवाडी में नोनियों के घर ज्यादा थे और परिवारियों के कम। घर ज्यादा हों या कम, जाति-वैर तो एक-सा था। यह कई मौकों पर भड़क उठता था। वरना बाकी समय नोनिये और परिवारिये आपस में हिलमिल कर ही रहा करते थे।

गांव के नोनिये हों या परिवारिये या विशेष संदर्भ में उनके साथ मिल जानेवाले गांव के अछूत हों, सबके सब सुखजीवी थे। चाहे जितने मेहमान आएं, वे परवाह नहीं करते थे, उन्हें खूब खिलाते-पिलाते और अमीरों जैसी उनकी खातिरदारी करते थे। उनकी वेशभूषा उनकी औकात से कई दर्जे ऊपर की होती थी। इनके घरों में स्त्री हो या पुरुष, हर कोई सोने और चांदी के आभूषण पहना करते थे। विवाह आदि शुभ समारोहों में पहनने के लिए दिव्य आभरण और उत्तम वस्त्र, दूसरे गांववाले संजवाडी से उधार ले जाते थे। प्रीतिभोज के लिए आसपास के बीस गांवों में भारी-भरकम कड़ाह संजवाडी से ही जाते थे। घर उनके बड़े मजबूत हुआ करते थे, हर परिवार की आवश्यकता के अनुसार दो-दो, तीन-तीन् ओसारेवाले और गचकारी से पक्के थे। घर इतने स्वच्छ कि दूध उंडेलकर फिर से दूध बटोर सको।

यक्षगान के कलाकार, गवैये, नर्तक, विदूषक, जादूगर, पहलवान आदि कलाकार अपना-अपना करतब दिखाकर ग्रामीणों का मनोरंजन करने अक्सर गांव में आया करते थे। एक जगह नहीं, दस-बीस घरों में खेल होता और उतनी आमदनी होती जो आठ-दस गांव घूमने पर भी हाथ न लगती। खेल खत्म होने के बाद मुखिया हो या कोई सभासद वस्त्र, आभूषण या सिक्के भेंट करता, तो कलाकारों में से कोई एक उसे प्रदर्शित करता और दाता का गुणगान करता। यह प्रथा आज भी गांवों में देखने को मिलती है। कुछ समय पहले तक यह कर्नाटक प्रथा शहरों में भी थी। "जितना दान उतना गान" के मुताबिक ज्यादा दान चढ़ानेवाले दाता का ज्यादा गुणगान सहज था। इसलिए गांव के चारों वर्ण के लोग अपनी अधिक से अधिक प्रशंसा सुनने के लिए होड़ लगाकर दान चढ़ाते थे। फनकारों के लिए आमदनी का यह एक अच्छा स्रोत था। इन समारोहों में नगर के सूबेदार जैसे अधिकारियों को बुलाकर उनका खूब आदर-सत्कार किया जाता था। दर्शकों के लिए यह एक खास तमाशा था।

राज्य कर्मचारी भी इस गांव के निवासियों के इशारे पर नाचते थे। ग्रामीणों में ऐसी कौन-सी ताकत थी? या गांव के हर निवासी को कुबेर का खजाना मिला हुआ था?

गांव के पुरोभाग में ही मारी कहलानेवाली शक्ति का मंदिर था, एक गणेश मंदिर और अखाड़ा भी था। गांव के आवारा मंदिर के ओसारे और अखाड़े में जमा होते थे। सवेरे से रात को गश्त पर निकलने तक ये लोग पटका, दण्ड-बैठक, मलखंभ, लाठी भांजना, तलवार भांजना, कुश्ती, मल्लयुद्ध आदि कसरतों में लगे रहते थे। बीच-बीच में पासा, चौसर, चौकड़ियां, स्टापू, अष्टचक्कनु, पच्चीसी आदि खेलों में मुट्ठी भर-भर कर चांदी के छोटे-बड़े सिक्के उड़ाया करते थे। ऐसे खेलों में लड़ाई-झगड़े मामूली थे। उस समय मारकाट पर भी उतर आते थे, एक दूसरे का सर भी फोड़ डालते थे। ऐसे वाद-विवादों को आपस में ही निपटा लेते थे, कचहरी तक पहुंचने नहीं देते थे। इनमें से बहुत-से लोग प्रति मास बहुल दशमी से शुद्ध पंचमी तक गांव से गायब रहते थे। इन दिनों वे घर छोड़कर बाहर चले जाते थे। वे जाते कहां, इसका पता उनके घरवालों को भी नहीं मालूम रहता था। पूछने पर बच्चे और स्त्रियां एक-सा उत्तर देते थे, "सवेरे बाहर गये हैं, रात तक लौटेंगे।"

इस तरह प्रवास पर निकल जाने से पूर्व ये लोग एक और काम करते थे। उस गांव में एक कंजड़ बड़ी श्रद्धा से ग्रामदेवता का पूजापाठ करता था। वह सरकार द्वारा मंदिर को दी गयी मान्य भूमि का जानकार था और अपना काम बखूबी निभाता था।

उस जमाने में मैसूर राज्य की सेना वीरता और पराक्रम के लिए विख्यात थी। इस सेना के बक्षी रामराव तथा उनके भतीजे बक्षी भीमराव महा-दंडनायक थे। इनकी ख्याति कन्या कुमारी से दिल्ली तक फैली थी। दोनों सरदार मैसूर नरेश के पक्ष में हों या कंपनी सरकार के पक्ष में, द्रोह-चिंतन न करके बड़ी निष्ठा से उनकी सेवा करते थे। इनके पराक्रम और साहस से मैसूर राज्य की सेना की कीर्ति न केवल हिन्दुस्तान में बल्कि यूरोप के देशों में भी फैल गई। एक बार इस सेना को कोल्लापुर पर चढ़ाई करनी पड़ी। सेना शहर को लूटने लगी। नगर में महालक्ष्मी का मंदिर है। माता के भक्तों की संख्या बहुत बड़ी है। उनका विश्वास है कि यह चमत्कार का क्षेत्र है। शाक्तों के लिए यह दिव्य क्षेत्र है। विजय से मदोन्मत लालची सैनिक जब शहर पर टूट पड़े तब उनके लिए उचित क्या, अनुचित क्या। इस प्राचीन प्रसिद्ध मंदिर को अनेक राजा-महाराजाओं ने विपुल संपत्ति दान में दी। असंख्य भक्तों ने मनौती और चढ़ावे के रूप में बहुत कुछ चढ़ाया है। ये सब मंदिर के भंडारों में भरे पड़े हैं। इन चीजों को भला कौन छोड़ता है? मंदिर को हाथ लगाये बिना भगवान को प्रणाम करके ही वापस चला जानेवाला पुण्यात्मा भला सैनिकों में भी कोई हो सकता है? ऐसे मौके को भला हाथ से कौन जाने देता है? सेना मंदिर में घुस गई। सब कुछ लूटकर ले जाते वक्त मंदिर - गर्भ में स्थित माता की नथ में विराजमान बड़े मोती को भी लूटकर ले गये। विश्वास किया गया कि माता क्रुद्ध हो गई और जहां कहीं यह मोती गया वहां हैजा फैला और लोग मर मिटे। यह साधारण जनता का विश्वास था। इससे कई वर्ष पूर्व ही वागूभट या बाहरट नामक वैद्यकग्रन्थ में

विशूचिका कहलानेवाले इस रोग के लिए निदान सूचित किया गया है। ऐसी स्थिति में यह कैसे मान लें कि मैसूर की सेना द्वारा कोल्लापुर की माता की नथ से मोती के लूटने से हैजे की महामारी फैलने लगी? फिर भी तब से इस रोग का प्रकोप बढ़ा, इसमें संदेह नहीं।

सालाना एक-दो बार संजवाडी पर इस महामारी की कृपा-दृष्टि पड़ती थी और गांव के घर-घर में प्रवेश करके अपना कर्तव्य निभाकर जाती थी। ऐसे समय में ग्रामीण भयभीत हो जाते और इसे माता का प्रकोप समझकर उनके प्रति अतीव भक्ति-भाव दिखाते। देवी कोल्लापुर की महालक्ष्मी के नाम से विख्यात हुई। जैसे-जैसे भक्तों की भक्ति बढ़ी वैसे-वैसे माता की महिमा भी बढ़ती गई। मनौती, गुल्लक के पैसे, दान आदि के रूप में चढ़ावे की आमदनी में भी वृद्धि हुई। इसी बीच बूढ़ा पुजारी चल बसा। उसका वारिस कोई नहीं था। पड़ोस के गांव में सिद्धा नामक एक आवारा कंजड़ था, जिसे दो जून रोटी मिलना भी मुश्किल था। उसने ऐलान किया कि वह मृत पुजारी का जातिबन्धु है और वह संजवाड़ी के माता मंदिर में पुजारी बनकर रहेगा। वह संजवाड़ी में आकर बस गया। तब तक स्थायी पुजारी की व्यवस्था नहीं हुई थी और लोग ऐसी विपत्ति के समय को अलग-अलग पूजा-अर्चना में गंवाना भी नहीं चाहते थे, तो गांववालों ने सिद्धा का सुझाव मान लिया। सिद्धा मृत पुजारी के घर रहने लगा और मंदिर-मान्य भूमि में कृषि करने लगा और मंदिर में पूजा करना शुरू कर दिया। प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए दिखावे की जरूरत पड़ती है। इसलिए सिद्धा ने पूजा-विधि में नई-नई योजनाएं शामिल कीं। मात्र मंगल व शुक्रवार को संपन्न होनेवाली पूजा में नित्यार्चन की व्यवस्था हुई। हर दिन एक-एक अलंकार की योजना हुई, शुक्रवार और मंगलवार को विशिष्ट दीपाराधना की प्रथा चल पड़ी। चढ़ावे का धन लोगों को प्रसन्न करने में खर्च होने लगा। अकसर जोइस के घर में भोग के मिष्ठान्न बनवाकर प्रसाद के नाम से घर-घर वितरित करने का कार्यक्रम भी सिद्धा ने शुरू किया।

बात यहीं नहीं रुकी। नये पुजारी ने अपनी हजामत बनाना भी बंद कर दिया। वह हर दिन नहाकर, स्वच्छ कपड़े पहने, माथे पर कुंकुम चढ़ाये बड़ी श्रद्धा से आराधना करता था। मंगल और शुक्रवार के दिन विशेष पूजा करके आरती के बाद मस्तक पर लाल कुंकुम धारण करके, लाल अड़हुल की माला पहने, हाथ में चांदी की पत्तर से मढ़ी काली छड़ी थामे आंखें मूंदकर मूर्ति के सामने बैठने लगा। कभी-कभी वह हठात् खड़े होकर मूठ भर कुंकुम बिखेरता। "कोल्लापुर की महामाता! आओ, पधारो! भक्तों की रक्षा करने पधारी हैं क्या?" कहते हुए सिद्धा आरती उतारता और नमस्कार करता। मुग्ध जनता पर इसका क्या असर पड़ता, इसकी कल्पना की जा सकती है। कोई कहता कि कोल्लापुर की महालक्ष्मी आकर यहां बस गई हैं और कोई कहता कि देवी सिद्धप्पा को दर्शन देती हैं। मौन धारण करके जब सिद्धा भगवती के सामने आसन जमाता तब लोग आगे बढ़ते और अपने कष्टों का बयान करते। कुछ समय चुप्पी साधकर सिद्धा कभी "मंगल", कभी "जय" और कभी "नहीं", यदा-कदा "जा" कहता था। वह भविष्यवाणी भी करता था। इन बातों से सिद्धा सिद्धप्पा

बना और सिद्धप्पा से सिद्धप्पाजी हो गया, और फिर सिद्धप्पाजी अप्पाजी बन गया। कोल्लापुर की माता आकर इस क्षेत्र में बसी हैं। माता अप्पाजी को दर्शन देती हैं। तब अप्पाजी की बात कभी झूठ हो सकती है भला? माता की महिमा से पुजारी की महिमा बढ़ गई। मोहिनी पिशाच, ब्रहमराक्षस आदि भूतों से ग्रस्त लोग, तरह-तरह के प्रारब्धकर्म से पीड़ित लोग, काने-लूले-लंगड़े, कुष्ठ रोगी, दीर्घ रोगी एक ओर ; रिश्ते-नाते जोड़ने वाले और सरकारी कामकाज में फंसे फरियादियों की भीड़ दूसरी ओर हमेशा मंदिर को घेरे रहती थी। मंदिर परिसर बढ़ता गया। एक बहुत बड़ा दालान निर्मित हुआ जो "अप्पाजी का दालान" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसमें अप्पाजी के लिए एक पीठ भी स्थापित हुआ।

यह था अप्पा का प्रभाव। इधर संजवाड़ी के निवासी जो कभी-कभी विजययात्रा पर निकल जाते थे, जाने से पहले वे अप्पाजी से भविष्य जानकर उनकी अनुमति प्राप्त कर लेते, फिर कोल्लापुर की माता की खूब सेवा करते। बाद में अप्पाजी की आज्ञा प्राप्त करके निकल पड़ते। ये साधारणतया दक्षिण देश जाते थे, पर वे जनसाधारण की तोप्पलूर घाटी और गेज्जलहट्टी घाटी से नहीं जाते थे। वे निर्जन जंगल के रास्ते से पहाड़ पर चढ़ते-उतरते जाते थे। एक बार तय किये रास्ते से फिर कभी नहीं गुजरते थे। इनकी पोशाक को कोई पहचान नहीं सकता था। गांव से निकलने के बाद इनके नाम और वेश दोनों बदल जाते थे। हिरनी, भालू, सूअर, नेलगविसिद्धेश्वर, नागरमुरी, घोड़ागाड़ी, इक्का आदि नाम रख लेते थे। वेश भी बदल डालते थे। उन्हें जाननेवाली मां भी इस वेश में उन्हें पहचान नहीं सकती थी। ये लोग कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम, हिन्दुस्तानी, कोरच, तोडव, लमाणी, कोडव आदि भाषाओं को जानते थे। हर एक व्यक्ति अपने पास छुरा और लाठी रखता। अपने काम के लिए जरूरी साधनों से लैस हो ये बड़े-बड़े शहर जाते और वहां दास, जंगम, पण्डे, भाट, नट, नंदी, वडरिये आदि बनकर अलग-अलग रहा करते थे। कई तो बड़े व्यापारी और ब्राह्मणों का वेश भी धारण करते थे। लेकिन आधी रात को गांव से दूर, घने जंगल में चुपचाप मिलकर रहस्यमय आवश्यक बातचीत कर लेते थे। वर्षाऋतु के बीतने के बाद ये लोग एक-एक, दो-दो करके गांव पहुंच जाते थे। इनके गांव छोड़ने की बात जैसे कोई नहीं जानता था, वैसे ही इनके गांव आने की बात भी कोई नहीं जानता था। हर एक बार ये पांच सौ रुपये से अधिक कमाकर चुपचाप गांव आ जाते थे।

यह आमदनी अप्पाजी की भविष्यवाणी और माता के प्रसाद का ही फल है न! अतः माता की सेवा और अप्पाजी के वरप्रसाद के लिए कुछ भेंट नहीं चढ़ाई तो कमाई कैसे हजम हो? दिग्विजय से लौटा हर वीर लाई हुई संपत्ति में से दसवां हिस्सा सौंप देता था। "कतरा-कतरा दरिया" बनकर एक अच्छी खासी रकम अप्पाजी के हाथ लगती थी। इस रकम से पुजारी माता के लिए अनेक गहने गढ़वाता, गरीबों और ब्राह्मणों के लिए भोज की व्यवस्था करता तथा मंदिर में महोत्सव मनाता। शादी जनेऊ आदि शुभकार्यों के लिए सहायतार्थ आनेवालों की यथाशक्ति सहायता करता। सदा लोग उसे घेरे रहते, उसे अत्यन्त गौरव से देखते।

6

शाला में लड़कों के कुतंत्र का शिकार बनकर अध्यापक नारप्पयूया इतना घायल हुआ कि उसका बचना ही मुश्किल हो गया। ऐसी स्थिति में उसे अपने घर लाकर तरह-तरह की औषधियों से घावों का उपचार करके सदाशिव दीक्षित ने उसे बचाया। उस ब्राह्मण की पीड़ा देखकर घर भर के लोगों ने मास्टर की सेवा सुश्रूषा की, यह भूलकर कि मास्टर महादेव को खूब पीटा करते थे। महादेव ने भी अपने अध्यापक की खूब सेवा की। बालक की इस उदारता से नारप्पयूया लज्जित हो उठा। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में उसे चार-पांच महीने लगे। उसकी पत्नी बच्चा जनने मायके गई थी, वह उधर ही बीमार हो गई। और वहीं उसकी दवा दारू चल रही थी। इस वजह से पन्त जोइस के घर में ही रुक गया।

महादेव की पाठशाला बंद हो गई। इसलिए दीक्षित ने बेटे को घर में ही पढ़ाना शुरू किया। गर्भाष्टमी में पुत्र का जनेऊ संस्कार संपन्न किया। भोर सवेरे अमरकोश और स्तोत्र पढ़ाता था। तब प्रातर्विधि समाप्त करके नहा-धोकर संध्या-वंदन व अग्निकार्य संपन्न करके महादेव रघुवंश आदि काव्यों का मनन करता था। दोपहर के भोजनोपरांत पाटी पर स्याही पोतना, गणित, लिखावट के नमूने पढ़ना आदि अभ्यास होते थे। नहाने के बाद दीक्षित नियमित रूप से पुत्र को पढ़ाता था। महादेव सहज ही बुद्धिमान था। बालकों की समझ में आने योग्य मनोज्ञ रीति से पिता पढ़ाते थे। पढ़ाने के ढंग में बच्चे न ऊबें न थकें ; ऐसी विशिष्ट रीति थी वह। पाठ क्यों नहीं पढ़ा, अध्ययन क्यों नहीं किया, कहकर दीक्षित ने पुत्र को कभी दण्ड नहीं दिया। सजा देने का मौका ही नहीं आता था। इस तरह अध्ययन जारी था। एक दिन गणित की पढ़ाई हो रही थी। एक विषय अस्पष्ट था तो महादेव ने बार-बार पूछा और समझाते-समझाते पिता थक गये। तब पिता ने पुत्र से कहा, "महादेव! इतना समझाने पर भी तुमने नहीं समझा। तुम बुद्धू हो।" दीक्षित ने बेटे को कभी डांटा नहीं था, सदा प्रीति से ही पेश आता था। "तू बुद्धू है" कहने पर महादेव को बड़ा अपमान महसूस हुआ। इसी दुःख में उसने न खाया, न पिया। उसे रात को नींद तक न आई, चुपचाप लेटा रहा।

पढ़ाई के बाद दीक्षित शाम की संध्या के लिए बाहर निकला। नारप्पयूया, जो ध्यान से पाठ सुनता रहा था दीक्षित के साथ ही चल पड़ा। दोनों बातचीत करने लगे।

नारप्पयूया : अब महादेव तीक्ष्णमति बन गया है, पर पाठशाला में वह नासमझ ही रहा। वह शायद संगदोष था। लाख पढ़ाने पर भी वह कुछ भी नहीं समझता था।

दीक्षित : युक्ति से छात्रों को मार्ग पर लाना होता है।

नारप्पय्या : जुगति करने पर भी लड़के मन लगाकर न पढ़ें तो उससे क्या लाभ?

दीक्षित : बच्चों के मन में सीखने के प्रति रुचि पैदा करना अध्यापक का कर्तव्य है।

नारप्पय्या : ऐसा कह नहीं सकते। मैं प्रत्यक्षदर्शी हूं, आपसे बढ़कर चातुरी से पढ़ानेवाला और कोई नहीं हो सकता। फिर भी देखिए, महादेव गणित पाठ समझने में असमर्थ रहा। ये लड़के मन लगाकर नहीं पढ़ते।

दीक्षित : आज का गणित-पाठ कुछ कठिन था, बड़ों तक के लिए वह चुनौती है। फिर भी बाद में समझाने के इरादे से मैंने पढ़ाई रोक दी।

नारप्पय्या : आपके इतना समझाने पर भी बच्चे नहीं समझें तो क्या किया जाए?

दीक्षित : दुपहर भर पढ़ते रहने से दिमाग थक जाता है। उस समय नये-नये क्लिष्ट विषय समझ में नहीं आते।

नारप्पय्या : मैं तो वह हिसाब बहुत ही अच्छी तरह समझ गया।

दीक्षित : उसका दिमाग जितना थका था उतना हमारा नहीं। मान लें कि थका भी था तो हम बड़े हैं और उतना क्लेश सह लेते हैं। वह बालक है, इसलिए सह नहीं सकता।

नारप्पय्या : अक्ल चाहिए जी, अक्ल, बड़े हों या छोटे! अक्ल कभी थकती है? बच्चे खेल के पीछे पड़कर चंचल चित्त हो जाते हैं। पाठ पर ध्यान न देकर वक्त बरबाद करते हैं। चार झापड़ जमाइये तो सुस्ती मिटेगी और ज्ञानोदय हो जायेगा।

दीक्षित : यह ठीक नहीं है, अध्यापक जी। अध्यापन क्षेत्र में इसी को लेकर हम दोनों में मतभेद है। शिशु तुतलाते रहते हैं। दो-तीन बरस के होने पर ज्यादा बोलने लगते हैं। क्या वे अक्षर जोड़ सकते हैं? हिसाब कर सकते हैं? उसके लिए और कई वर्ष चाहिए। शरीर के साथ-साथ वह बुद्धि से भेदाभेद और सामान्य धर्म को भी समझता चलता है। उम्र के साथ यह ज्ञान बढ़ता जाता है। दृढ़ देहवाले बालिग ज्यादा समय तक काम करते हैं। सीमित शक्तिवाले बालक कम काम करते हैं, ज्यादा काम कराने से वे थक जाते हैं। बड़े लोग जल्दी नहीं थकते। जैसे यह शरीर के लिए लागू होता है, वैसे ही दिमाग के लिए भी सही है। यह अनुभवसिद्ध विचार है। इस तरह छोटों की बुद्धि-शक्ति कम होती है और बड़ों की ज्यादा। बुद्धि भी थकती है। हमें कभी यह नहीं मानना चाहिए कि बालक हर विषय में बड़ों के समकक्ष हैं।

नारप्पय्या : पूछते ही कई छात्र झट से उत्तर देते हैं, दूसरे भी ऐसा क्यों नहीं

समझते? समवयस्क बच्चों में से एक ही पाठ को कोई समझता है और कोई नहीं, यह क्यों?

दीक्षित : इस पर सुदीर्घ विचार कीजिए, तो स्पष्ट हो जायेगा। अक्ल और अक्ल में फर्क हुआ करता है। उसमें तीक्ष्णता का कम या ज्यादा होना सहज है जो प्राचीन कर्म के अनुसार होता है। छात्रों के बीच समझपरक अंतर होने के अनेक कारण होते हैं। जैसे, अध्यापन के समय बालक की देह-स्थिति, उसका आहार, पढ़ाई के वक्त मन को त्रस्त करनेवाली अन्य विघ्न-बाधाएं, विषय-ग्रहण की उसकी रीति, गृहीत विषय का मौखिक प्रतिपादन, उसके लिए आवश्यक समझ, उसकी मन की निर्भीकता आदि-आदि। अधिक जानकारी के लिए इन आधारभूत कारणों के सूक्ष्म अनुसंधान की आवश्यकता है।

नारप्पय्या : क्या, यह संभव है कि इन सब पर ध्यान देते हुए पढ़ा सको?

दीक्षित : हां पन्त जी, संभव है। इन सब पर ध्यान देते हुए बालक की मेधा की प्रकृति और परिमाण को जानकर पढ़ानेवाला ही असली अध्यापक है। बच्चों को पढ़ाना परकाय-प्रवेश करने के समान है। मैं जो कुछ पढ़ाता हूं, उसे छात्र किस प्रकार समझता है, इसे जान लें तो पता लगा सकते हैं कि विद्यार्थी ने समझा है या नहीं। हम जो नहीं जानते, उसे दूसरे हमें समझाते हैं न, तब हमारी क्या मनःस्थिति रहती है, यह भी जानना आवश्यक है। अध्यापक का यही गुण सहनशीलता कहलाता है। अध्यापक इसे भूल जाते हैं और गुमराह हो जाते हैं। उन लोगों ने मान लिया है कि अध्यापक पद की शान इसी में है कि उन्हें देखते ही विद्यार्थियों के मन में डर पैदा हो जाय। इसे वे प्राथमिकता देते हैं। पाठ पढ़ाते समय आवश्यक है कि छात्र शांत और स्वस्थ मन से सुने और समझे। पर ऐसा कहां होता है? इसके लिए अवकाश ही नहीं मिलता। मन में उठते-बैठते पिटाई का डर! प्रश्नों का तुरंत उत्तर दो, तो पिटो ; देरी से दो तो भी पिटो कि "तुमसे किसने पूछा था?" हर वक्त छड़ी की सेवा! यही अध्यापन, यही पढ़ाई! पढ़ाई गई बात को दस बार दुहराने को कहते हैं अध्यापक। शिष्य उसे दुहरा सकता है, उसका वह दुहराया हुआ है, फिर भी गुरु से पिटने के भय से जल्दी-जल्दी उच्चारित करते समय जीभ पलट जाती है, अपशब्द निकल पड़ते हैं। छात्र फिर से पिटता है।

नारप्पय्या : तो अब तक मैंने परिश्रम से शिष्यों को जो तैयार किया वह बेकार गया, यही न? नदी के पानी में नमक जैसा!

दीक्षित : पन्त जी, गुस्सा नहीं कीजिए। मैंने सच ही कहा है, बस।

नारप्पय्या : दंड के भय से जल्दी याद करके मुंह खोलेंगे, क्यों ठीक है न?

दीक्षित : मार पड़ने के भय से स्मरण शक्ति तात्कालिक रूप से जागृत हो उठती है। बालक के मन में मार और उसके भय से निकलनेवाले उत्तर का संबंध जुड़ जाता है। हर बार उत्तर देते समय पिटाई की याद हो आती है। भय और विचार एकजुट हो जाते हैं। भय से जिस प्रकार जी आतंकित होता है उसकी स्मृति भी वैसे ही त्रस्त हो उठती है। जो विचार आतंक फैलाता है उसे याद कौन रखे? इस तरह पिटाई के भय से विचार, स्मृति-पटल से ओझल हो जाता है। किसी विचार को बलपूर्वक दो-चार बार रटने पर भले ही तत्काल वह याद रहे, पर कुछ समय के बाद उसे भूल जाना सहज है। ऐसी स्थिति में भय-प्रेरित कोई भी विचार मन में क्या सचमुच टिक सकता है? इस तरह पढ़ाये गये किसी भी विषय को भूल जाने का मार्ग खुद खोलकर, फिर, लड़के के भूलने पर उसे सजा देना कहां का न्याय है?

नारप्पय्या : क्या मतलब? मैंने लड़कों को अब तक जो कुछ पढ़ाया उसे इस उद्देश्य से कि वे भूल जायें?

दीक्षित जी गहराई तक पैठकर बोलते - बोलते पन्त के कारनामों की याद हो आने से कुछ गुस्से में बोलने लगे; आपके पढ़ाये हुए पाठ वे भले ही भूल जायें, किन्तु, आपकी पिटाई से उपजे द्वेष का आप स्वयं शिकार न बनें— इसका सच-झूठ आप स्वयं जानते हैं। अब तक आपने जो पीड़ा सही, वही इसके लिए साक्षी है। विद्यार्थी बिखर गये, शाला बंद हो गयी और पांच-छः मोहरों की मासिक आमदनी रुक गई। यही साक्षी है। अध्यापक की अर्हता के अनुसार विद्यार्थी तैयार होते हैं।

नारप्पय्या : जैसे मेरी पाठशाला में कोई तैयार ही नहीं हुआ?

दीक्षित : जितने लोग जिस हद तक तैयार हो सकते थे उस हद तक तो तैयार नहीं हुए न!

नारप्पय्या : कई छात्र तो हुए होंगे?

दीक्षित : मार-पीट कर आपने जो सिखाया उसे किसी ने नहीं सीखा। हो सकता है कि बिना भय दिखाये जो पाठ सिखाया उन्हें सीखकर समझा होगा। पाठशाला में मैं भी पिटा हूं। मार के साथ, भय और घबराहट की स्थिति में पढ़ाया गया कुछ भी मुझे याद नहीं।

नारप्पय्या : अपनी बात से आप यही जाहिर कर रहे हैं कि मैं निकम्मा हूं।

दीक्षित : दुनिया में न निष्प्रयोजक वस्तु है न मनुष्य।

नारप्पय्या : आपकी दृष्टि से मैं अप्रयोजक हूं।

दीक्षित : लगता है कि मेरी बातों से आपको गुस्सा आया है, पन्त जी। आप क्रुद्ध न हों। इसी संदर्भ में और भी कई रहस्य आपको बता दूं। यदि आपने क्रुद्ध होने की ही ठान ली है, तो किसी के समझाने पर आप शांत नहीं होंगे। आपके जानने योग्य और भी विषय हैं, उन्हें भी मैं बता दूंगा। आप एकबारगी चाहे जितना गुस्से में आ जायें।

नारप्पय्या : तो बता दीजिए।

दीक्षित : तब सुनिये। बच्चों के रोने से न पसीजनेवाला हृदय कठोर कहलाता है। ऐसे पत्थर-दिल लोगों को संतान-प्राप्ति अपवाद है। संतानहीनता का मुख्य कारण कठोर-हृदयता ही है। मृदु हृदयवालों को संतान प्राप्त होती है और संतानप्राप्ति से हृदय की कोमलता बढ़ती है। निर्बल बच्चों, बूढ़ों और गरीबों के लिए परमात्मा के हृदय में विशिष्ट स्थान है। निर्मलचित्त बालक सदा भगवान के सान्निध्य में सेवारत रहते हैं। भगवान् अपने मन से सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनत्सुजात नामक चार महायोगियों को निर्मित करके, उन्हें चिर बाल्यावस्था का वरदान देकर अपने पास ही रखकर आनंद का अनुभव कर रहा है। वरना ध्रुव कैसे जी उठा? प्रह्लाद की रक्षा किसने की? परमेश्वर ने कोलूर कुमार की पुकार सुनकर दूध नहीं पिया? अंत में उस शिशु की रक्षा नहीं की? भगवान ने, मनौती के कारण रथ के चक्र के नीचे फेंके गये बालक के बाल को भी बांका नहीं होने दिया! परम वृद्ध महर्षि निरंतर भगवान के समीप ही रहा करते हैं। उन तपस्वियों का मन सदा भगवान में ही लीन रहता है, इसीलिए भगवान को भक्तपराधीन कहा जाता है।

गरीबों पर उनकी असीम कृपा का क्या वर्णन किया जाय। सुदामा की गरीबी को देखकर उन्होंने कैसा व्यवहार किया और सुदामा का कैसा सत्कार किया, हम सब जानते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कौरवों और पांडवों में संधि करवाने हस्तिनापुर गये जहां अनेक राजाधिराज उनके सत्कार के लिए तैयार बैठे थे। कृष्ण को यह स्वीकार नहीं था। वे उस निर्धन विदुर के यहां पधारे जो संकोच करते रहे कि उनके पास भगवान के आतिथ्य के साधन न थे। वहां भगवान ने एक बूंद दूध चखा कि विदुर के घर के सामने दूध की नदियां बहने लगीं। भक्त-वत्सल को अपने भक्तों की रक्षा करने में बड़ी प्रसन्नता होती है।

नारप्पय्या : इन पुराण कथाओं को लेकर मैं क्या करूं? आप बड़े पंडित हैं। आपका उपदेश सुनकर मुझे ज्ञानोदय हो रहा है। अब बात करने से क्या लाभ?

दीक्षित : और एक बात सुनिये। कभी कभार छात्रों को दंडित करने का मौका भी आता है। तब केवल शरीर को कष्ट पहुंचाना ही दंड न समझें और यह भी न समझें कि मारपीट के अलावा अन्य उपाय ही नहीं है। प्यार से

बच्चों द्वारा बहुत कुछ कराया जा सकता है। बच्चे जब कभी भूल करते हैं, तो उनसे कम प्यार से पेश आइए। वही पर्याप्त है। इसका प्रभाव बच्चों पर अत्यधिक पड़ता है।

इस तरह वार्तालाप करते हुए दीक्षित और नारप्पयूया नदी के किनारे पहुंचे। वहीं शाम बिताकर घर लौटे। दीक्षित की बातों ने नारप्पयूया के मन में घर कर लिया। दीक्षित भी यही सोचता रहा। लौटते वक्त कुछ न बोला, पर कुछ समय के बाद बात छेड़कर उसने कहा — हो सकता है कि यह आपको छोटे मुंह बड़ी बात लगे। पर इसमें और भी सूक्ष्म तथ्य हैं। माता हो, पिता हो या गुरु, बच्चों को डराने के लिए मारपीट करते रहें तो उनके मन में बड़ों के प्रति भक्ति के बदले उपेक्षा जगती है। वे समझ बैठते हैं कि इनके पास पिटाई के अलावा और कुछ है ही नहीं। वे बड़ों से द्वेष करने लगते हैं। इसी कारण से बच्चे माता-पिता से, गुरु से कट जाते हैं। इस बारे में आप जितना भी सोच विचार करें, उतने ही नये तत्व निकलते जाते हैं।

इस तरह बातचीत करते हुए दोनों घर लौटे, खा-पीकर लेट गये। नारप्पयूया को नींद नहीं आई। सदाशिव की बातें उसके मन में गूंजती रहीं। रात भर वह विचार करता रहा। दीक्षित के उपदेश में छिपी तिरस्कार भावना ने उपाध्याय के मन को झकझोर डाला। अपनी खामियों की ओर लोग अंगुली उठाते हैं, तो आदमी आग-बबूला हो जाता है। इसी कारण नारप्पयूया का मन भी उत्तेजित हो उठा। उसने विश्वास कर लिया कि उसका अपमान करने के लिए ही दीक्षित ने भाषण झाड़ा है। उसके मन में मैल रह गया।

छात्रों के अभाव से पाठशाला के बंद होने के बाद भी नारप्पयूया पांच छः महीनों तक पीड़ा सहते हुए पड़ा रहा। बाद में घावों के भर जाने के बाद दीक्षित के घर में खा-पीकर आराम करता रहा। दोनों जून खाने के लिए घी-भात मिल जाता था और करने के लिए कोई काम न था। वह सवेरे शाम कोल्लापुर माता के मंदिर में सिद्धप्पाजी की सेवा करते हुए उनका स्नेहभाजन बन गया। दोनों घने मित्र बन गये। कभी नारप्पयूया मंदिर पहुंचने में देर करे तो सिद्धप्पाजी कहला भेजता था। इस वजह से गांव के गण्यमान्य लोगों के साथ भी पन्त का परिचय बढ़ा। ये लोग वर्षाऋतु में दिग्विजय के लिए निकलने के पूर्व नारप्पयूया से भी सलाह लेते थे। धीरे-धीरे गांव की दुष्ट शक्तियों का पन्त विश्वासपात्र बन गया।

इन लोगों की तरह-तरह की सहायता करते हुए यह अध्यापक उनका उपकारी सिद्ध हुआ। इसी बीच नारप्पयूया के मन में दीक्षित के प्रति आक्रोश भरने लगा। यह द्वेष राख से ढकी आग की भांति भीतर ही भीतर दहक रहा था, ऊपर नहीं दिखता था। "इस दीक्षित ने मुझे निकम्मा ठहरा दिया न" कहकर वह अक्सर दुःखी होता था। वह मन ही मन सोचता कि इस अपमान का बदला दीक्षित से कैसे लिया जाय। अपने परम आप्त पुजारी सिद्धप्पाजी से अक्सर इसके बारे में सलाह-मशविरा करता। इस प्रतीकार भावना के बार-बार जागृत होने से नारप्पयूया के मन में द्वेष बढ़ता गया। इस क्रोध के आवेग में दीक्षित का उपदेश और उसके

एहसान काफूर हो गये। यह सब होते हुए भी अध्यापक दीक्षित के घर में ही खाता और सोता था। यह घर छोड़ता तो एक वक्त का खाना देने वाले भी उस गांव में नहीं थे। मीठी बोली सब बोलते हैं, दोस्ती सब दिखाते हैं पर उपकार करने कोई आगे नहीं बढ़ता। हजार बार हरिनाम ले सकते हैं, पर एक हरिभक्त की भूख मिटाना आसान नहीं। अध्यापक द्वेष को मन ही मन पाल रहा था।

7

इसी बीच महादेव की शिक्षा संपन्न हुई। विद्वत्ता उसके चेहरे से टपकती थी। उसके रूप, विद्या और पिता की संपत्ति को देखकर कन्यापिताओं में उससे रिश्ता जोड़ने की होड़-सी लगी थी। मामा पशुपति सांबशास्त्री की सम्मति के बिना दीक्षित किसी भी मंगलकार्य के लिए आगे नहीं बढ़ता था। अंततः महादेव की शादी सांबशास्त्री के पुत्र की कन्या से करने का निश्चय हुआ। बारह कूट मिलते थे। मैसूर में ही शादी संपन्न हुई। कन्या के रूप और गुणों का वर्णन यहां संभव नहीं। आगे उनका परिचय होगा ही। विवाह के लिए आवश्यक वस्तुओं को महल से भेजने का हुक्म हुआ, मानो श्री कृष्णराज प्रभु पशुपति सांबशास्त्री के गुणविशेष के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाने के अवसर की प्रतीक्षा में थे। बड़े ठाट-बाट से होनेवाले इस विवाह में शोभायात्रा आदि में भाग लेने के लिए हाथी, अम्बारी, चांदी की तीस लाठियां, तुरही, डफली, शहनाई मंडली, दो नर्तकियां साथ में मशाल-बत्ती व तेल, दो हरकारे आदि को शादी के संपन्न होने तक भेजने का हुक्म हुआ। महल के कर्मचारी, कचहरी के नौकर चाकर और दरबार के विद्वान आदि प्रीतिभोज में आमंत्रित थे। हर दिन सूजी की मिठाई बनती थी। हर दिन आरती के समय संगीत, नाच-गाने, बीच-बीच में विदूषक नारणप्पा का मसखरापन, इन सबको मात करनेवाले वेदघोष व शास्त्रार्थ, ये सब संपन्न हुए।

जिस पुरुषश्रेष्ठ की औदार्य से यह सारा संतोष और वैभव संभव हो सका, सांबशास्त्री उसकी चरणधूलि के पुण्य स्पर्श से विवाह-मंडप को पवित्र और अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहता था। इसलिए मंगलकार्य के बीच एक दिन समय निकालकर शास्त्री महल पहुंचा। शिव की आराधना के बाद जब महाप्रभु भोजनशाला के लिए पधार रहे थे तब उन्हें फलपुष्प आदि समर्पित करके सांबशास्त्री हाथ जोड़े सिर झुकाकर दूर खड़ा हो गया। सदाशिव दीक्षित भी साथ ही दूर खड़ा था। राजा साहब ने पूछा, "क्यों शास्त्री जी? विवाह संपन्न हुआ न?"

सांबशास्त्री : आप श्रीमान् की कृपा से संपन्न हुआ।

राजा ने हंसते हुए सदाशिव से कहा चुपचाप दूर क्यों खड़े हो? ऊंचा रिश्ता जोड़ा है इसलिए खुद को बड़ा मानते हो? हम से नहीं बोलोगे?

सदाशिव : महाप्रभु! मेरे गर्व का कारण आप कृपालु ही हैं।

राजा : यह क्या? दोष भी मेरे मत्थे मढ़ते हो?

सदाशिव : मामा जी दरबारी विद्वान् हैं, उनके बारे में क्या कहें? मैं गंवार अकिंचन,

मेरी औकात ही क्या है? कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली? कहां दिल्ली कहां पल्ली? फिर भी आपने इस नाचीज पर इतनी दया दिखाई, तो गर्व से फूला न समाऊं तो क्या बुरा है?

राजा : तुम नहीं जानते कि लाखों गांव मिलकर एक दिल्ली बनी है?

सदाशिव : प्रभु के संरक्षण के कारण ही गांव आज गांव बना हुआ है?

राजा : अरे वज्रशावक, तुम्हारी बात कौन काट सकता है?

सदाशिव : उपाधि भी आप ही की प्रदान की हुई है।

राजा : आप दोनों को देखने से लगता है कि आप कुछ निवेदन करने आये हैं। कोई अभाव है? कुछ कमी है?

पशुपति : विवाह की मांगलिक भूमि सुख-संतोषों के दाता महाप्रभु के पादस्पर्श सुख से अब तक वंचित है। इससे बढ़कर कोई अभाव हो भी सकता है, राजाधिराज?

राजा : आपका आशय है कि हम विवाहमंडप में पधारें, यही न? किंतु हमारे आने से मांगलिक भूमि का परिशुद्ध होना केवल उपचारोक्ति है। असल में आप जैसे विद्वज्जनों की निवास-भूमि के संसर्ग से हमारा जन्म सार्थक होता है।

पशुपति : जन्मांतर में तपस्साधना करते समय किंचित् तपस्वी तपोभंग के कारण राजामहाराजाओं के रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। ऐसे तपस्वियों के पुण्य स्पर्श से साधारण लोग पवित्र हो जाते हैं न?

राजा : देखिए, इसके बारे में मैं अधिक कुछ नहीं बोल सकता। जैसी आपकी इच्छा।

जैसा आदेश मिला उसके अनुसार सारी व्यवस्था हुई। प्रभु निर्धारित दिन सान्ध्य शिवपूजा के बाद गुलाबी रंग की पगड़ी, सफेद अंगरखा और काली किनारेवाली धोती से अलंकृत हो नक्काशीदार जूते पहनकर पालकी पर आरूढ़ हो निकल पड़े। विवाह मंडप में साम्बशास्त्री तथा एकत्र लोगों ने वेदघोष, ब्राह्मणाशीर्वाद, फल-मंत्राक्षत, दर्पण व कलशधारी सुमंगलियों तथा अन्य राजगौरव के साथ प्रभु की अगवानी की। महाप्रभु को अंदर ले गये। वहां तरह-तरह से अलंकृत आसन पर आरूढ़ होकर कृष्णराज प्रभु ने सबका कुशल-मंगल पूछा। उपस्थित श्रोत्रीय ब्राह्मणों ने वेद-मंत्रों का पठन किया और साशीर्वाद फल-मंत्राक्षत समर्पित किया। एकत्र लोगों ने नमस्कार किया। एक ओर वर वधू मंगलासन पर विराज रहे थे। नाच हो रहा था, स्त्रियां गा रही थीं। इस सुअवसर के लिए ही सदाशिव दीक्षित ने तीन चरणों वाला एक गीत रचा था जिसे एक चतुर गवैया गा रहा था। विवाह मंडप के इस कोलाहल के बीच अचानक जोर की एक आवाज सुनाई पड़ी, "या इलाह इल्लिल्लाह, मोहम्मद या रसूलिल्लाह! अल्लाहो अकबर।" यह आवाज वैदिक मंडली से आई थी।

गाना-बजाना बंद हो गया। सभी घबरा गये। कोई नहीं जानता था कि आवाज कहां से आई। बाहर खड़े चोबदारों को बुलाकर पूछने पर पता चला कि उन्होंने ऐसा पुकारा नहीं था। तब इस ओर से सभा का ध्यान हटकर अगले कार्यक्रम पर केंद्रित हुआ।

उस समय सफेद साड़ी पहने सिर पर पल्लू काढ़े एक स्त्री सुमंगली स्त्रियों की भीड़ से बाहर निकली और वर-वधू की आरती उतारकर उनके सामने रखी गई थाली उठाकर दूसरी स्त्रियों को पुकारने लगी, "कोई आओ तो! यंकी, दोड्डच्ची! पाती, तुम आओ और साकी तुम! उठाओ थाली! चलो, अच्छा हुआ। अब गाओ, आरती का गीत! एक चरण काफी है। प्रभु कब तक बैठे रहेंगे! अच्छा, तुम लोग गा नहीं सकतीं। चलो, मैं ही एक चरण गा लूंगी।

हथेली के सिंहासन पर बिराज रही लकुमी नासा रूप।।
ललनाओ! उतारो हंसी-खुशी यह आरती अपरूप।।
संग बिराजे वीर सुश्री चूना महाभूप।।
जय मंगलम् नित्य शुभ मंगलम्।

अरी छुईमुइयो! एक मंगल गीत भी नहीं गा सकतीं! ऐसा तो और कहीं नहीं देखा, बहनो। नहीं तो नहीं सही। आरती का चढ़ावा तुम्हीं लोगों को नहीं मिलेगा, पर मुझे भी नहीं। घर जाऊं तो वे झाड़ू हाथ में लेंगे और पूछेंगे कि देर रात आई हो तो क्या लाई हो। मैं क्या जवाब दूं? छिः! "जब यह कहते हुए उसने आधा मुंह ढंके पल्लू को नीचे सरका दिया तो लोग क्या देखते हैं कि आधी धोती को ही पल्लू बनाकर ओढ़े हुए खड़ा व्यक्ति स्त्री नहीं, पुरुष है! वह मसखरा नारणप्पा ही है। सभा में हंसी की लहर दौड़ गई। वर-वधू भी खूब हंसे। महाराजा भी कह उठे," इस नारणप्पा की लीला हर जगह फैली हुई है?"

विदूषक-नारणप्पा : महाप्रभु! नारायण की लीला कब रुकती है? उठते ही बिस्तर पर नारायण की लीला, रात को सोते वक्त भी नारायण। भूखे हैं तो नारायण। आठ-दस दिनों से मिल रहा पशुपति सांबशास्त्री के घर का भोजन मिले, तभी नारायण। कर्ज लेते हुए खुशी से नारायण, उसे चुकाते हुए रोते-रोते नारायण। हर जगह नारायण की ही लीला है, महाप्रभु। मंदिर जाइये तो नारायण की लीला, सबसे बचकर आपके सम्मुख हाजिर हो तभी नारायण की लीला है। कहो भाई, है न?

राजा साहब की बगल में एक सिपाही खड़ा था जिसकी हर बात पर "नारायण लीला" कहने की आदत थी। उसका नाम ही "नारायण लीला" पड़ा था और हर कोई उसे उसी नाम से पुकारता था। नारणप्पा के प्रश्न का उत्तर उसने "नारायण लीला" कहकर दिया। तब नारणप्पा यह पूछते हुए उसकी पीछ ठोंकने लगा कि "कहो, है कि नहीं।" वह हर बार चिल्लाने लगा "नारायण की लीला", "नारायण की लीला।" सभासद हंस-हंस के थक गये। इसके बाद वर-वधू की आरती उतारने स्त्रियां आगे नहीं बढ़ीं, वे सकुचा गईं।

महाप्रभु के महल लौटने का समय हुआ। तब विदूषक नारणप्पा ने निवेदन किया, "प्रभु चरणों में एक निवेदन है। पशुपति सांबशास्त्री जी बहुत बड़े विद्वान हैं, पर इनके अत्याचार को रोकनेवाला कोई नहीं। इसका वर्णन कैसे करें? अब वेंकटसुब्बयूया जी को ही लीजिए, जब वीणा बजाते हैं तो सरस्वती के अवतार लगते हैं और नन्हे विनायक ही नजर आते हैं। भगवान उनका भला करें, ब्रह्मभोज दें तो वे ही दें। उनके यहां शादी हुई तो भोज दिया। उसका वर्णन करने के लिए दस मुंह भी काफी नहीं। साठ तरह के पकवान, हजार तरह की दाल और करोड़ तरीके के व्यंजनों सहित परोसे गये भोजन का मैं क्या वर्णन करूं? पर यह सब शेखचिल्ली का सपना है। पर वास्तव में मोटा चावल, पानीदार दाल और पतली छाछ परोसकर महानुभाव ने हमारी बदहजमी दूर कर दी।" अन्नमू पाटलि पुष्प वर्णसहशम् किंचित्तुषारान्वितम्......भग्नाच दन्तावली आज्यम् दूर तरम् नवापि लवणम् शाखासुवस्तानहिनित्यम् चित्र विचित्र भोजनविदम् प्रत्यक्षचान्द्रायनम् "श्लोक को चरितार्थ कर दिया। पर शास्त्री जी ने ऐसा खिलाया है कि हम हिल-डुल नहीं सकते, महाप्रभु।" हंसोड़ नारणप्पा ने जोर से कहा।

हंसते हुए राजा साहब उठ खड़े हुए। शास्त्री जी ने कई थालियों का नजराना समर्पित किया। परंपरा के अनुसर महाप्रभु ने स्वीकार सूचक रूप से उन्हें छू लिया, फिर वर-वधू को पारितोषिक प्रदान किया। राजा साहब वधू की ओर इशारा करते हुए बोले, "शास्त्री जी, पातिव्रत्य के समस्त लक्षणों से समन्वित इस लड़की का सीता नाम रखकर आपने ठीक ही किया है।" उपस्थित लोगों से कुशल प्रश्न करके भाटों की स्तुति के बीच राजभटों सहित महल लौटे। सांबशास्त्री ने निवदेन किया, "महाप्रभु! ऐसे आनंद का अनुभव मैंने आजन्म कभी नहीं किया था।" एकत्र जनता ने राजा की सज्जनता, विनय और दान-शीलता का खूब बखान किया। ऐसी सुलभसाध्यता और मार्दवता को गांभीर्य के साथ पाना, और फिर उनका एक दूसरे के साथ विरोध में न रहना बहुत अपूर्व है। बड़े बड़े ओहदों पर विराजनेवाले पुण्यपुरुषों में ऐसे गुण पूर्वजन्म के पुण्य विशेष के ही फलस्वरूप होते हैं। जबकि आजकल लोग एक मामूली सरकारी नौकरी पाकर भी गर्वोन्मत्त हो जाते हैं। बड़े-बड़े पदों के मिलने से प्रजाजन पर रोब जमाते हुए उन्हें तरह-तरह से सताते हैं। उनकी फरियाद अनसुनी करके उनसे बातचीत करना भी अपनी इज्जत के खिलाफ मानते हैं। वे दूर रहें तो कहते हैं, उनकी शिकायत ही नहीं है। अर्ज करें तो ढीठ कहकर चार बात अधिक बोलें, तो द्वेष से उनका सर्वनाश करके, अपने अज्ञान, अविवेक और क्रोध से करनेवाले ऐसे हर काम को राजासाहब के सिर मढ़ते हैं। भलाई हो तो अपनी ओर से और बुराई हो तो राजा की ओर से कहकर राजा के समीप किसी को फटकने तक नहीं देते। राजा के पास शिकायत न पहुंचे, इस तरह सदा चौकन्ने रहते हैं। सामने राजा की तारीफ कर, पीछे उनकी निंदा में लगे ये लोग सदा अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे रहते हैं। मदमत्त राजा लोग सदा अपनी तारीफ करनेवाले निकटवर्ती लोगों को ही आप्त मानते हैं, उनकी सलाह के अनुसार चलते हैं। इस तरह शासकों के निकटवर्ती लोग सदा राजा और प्रजा के बीच दीवार बनकर खड़े रहते हैं।

ऐसी स्थिति में राजा प्रजा के साथ बोलना भी अपना अपमान समझता है। राजा और प्रजा एक दूसरे से दूर हो जाते हैं और एक दूसरे को समझने से वंचित रह जाते हैं, परस्पर द्वेष करने लगते हैं। सर्वशक्तिशाली राजा प्रजापीड़न करते हुए भोगविलास में डूबे रहते हैं।

यह सच है कि ऐसा व्यवहार प्राच्य देशों के राजाओं में ज्यादा पाया जाता था। राजसी प्रवृत्ति की पराकाष्ठा सभी में पाई जाती थी, मानो इस दिशा के नरेशों की ललाटरेखा एक-सी लिखी गई हो। फिर भी पुराण प्रसिद्ध नल, मांधाता, श्रीराम जैसे चक्रेश तथा अर्वाचीन युग के अनेक राजा-प्रजा को ही परम देव मानकर, बिना अहंकार दिखाये उनसे सहज ही मिलकर, उनके सुख-संकटों को जानकर प्रजापालन करते थे। पाश्चात्य देशों में भी कई राजा अपने अहं को भूलकर, प्रजा के लिए सुलभ-साध्य रहे, जिससे जनता के दुःख-दर्द को जान सकें, उनकी सेवा कर सकें। उस जमाने में पश्चिम में प्रजाशक्ति प्रबल नहीं थी ; वहां राजा भी घंमडी नहीं थे। वे प्रजा को चाहते थे। आजकल जब से पूर्व और पश्चिम के बीच संपर्क बढ़ गया ; वहां के राजा प्राच्य देश के नरेशों का अनुकरण करने लगे ; अहंकारी बने, मत्त बने। पर राजसी वृत्ति के साथ प्रजापरिपालन के भी निर्वहन में वे अनुभवी न थे। वहां की प्रजा अपने शासकों की इस नवीन प्रवृत्ति को सह न सकी ; लड़-झगड़कर राजाओं से एक-एक करके अधिकार छीनने लगी, राजा के विनष्ट होने के बावजूद प्रजा सुरक्षा व सुराज्य प्रदान करनेवाली संस्थाओं को स्थापित करने में समर्थ हुई। प्रजाशक्ति के बढ़ने पर भी राजाओं का अट्टहास और दंभ, प्रजा की अवहेलना और स्वार्थियों की सलाह पर चलकर पथ-भ्रष्ट होना बराबर पाया जाता है। इससे ये शासक प्रजा के अनुराग से वंचित हो चले हैं। लोगों में राज-भक्ति के विनष्ट होने से कई राजाओं के गद्दी से उतरने के और इन संघर्षों में कई राजा और प्रजाजनों के हताहत होने के भी उदाहरण मिलते हैं।

ऐसी घटनाएं पाश्चात्य देशों में घटीं, इस देश में नहीं, इसके भी कारण हैं। यहां के राजाओं में अहं और दंभ के ज्यादा रहने पर भी आवश्यकता पड़ने पर उन्हें किनारे रखकर, प्रजा में स्वयं भी एक बनकर उनका परिपालन करने का गुण विशेष रूप से पाया जाता है। यही कारण है कि राजा कितना भी दुष्ट क्यों न हो, वह यहां राजा बनकर रह सकता है। इसी गुण के कारण हमारे राजा पाश्चात्य राजाओं की दुर्दशा से बचे रहते हैं। पर आजकल पाश्चात्य राजाओं की भांति हमारे नरेश भी असहृय व्यवहार करने लगे हैं जिनके दुष्परिणाम निकट भविष्य में देखने को मिलेंगे। निकटवर्ती लोगों के बुरे गुण ही राजा में भी प्रतिफलित होते दिखते हैं। यों भी कृष्णराज ओडेयर तृतीय सर्वसुलभ और उदार थे जिससे उनके कट्टर शत्रु भी उनके मित्र बन जाते थे। प्रजा को पुत्रवत माननेवाले इस महान राजा के विवेक से ही मैसूर राज्य आज की सुस्थिति में है।

इस प्रकार विवाह संपन्न हुआ। बारात का सत्कार, मुंह दिखाई, वर-सम्मान, विदाई-भोज, बारात की विदाई आदि रस्में अदा की गईं। समधी संजवाडी के लिए रवाना हो

गये। शिष्य महादेव की शादी में गुरु नारम्पय्या भी आया हुआ था। शादी का ठाट-बाट देखकर वह मन ही मन कुढ़ रहा था।

मायके में सीतम्मा के नियत व्रत आदि होते रहे। विवाह में, उपहार वितरण में, भेंट चढ़ावे में, कन्या और वर पक्ष के बीच किसी तरह की अनबन नहीं हुई, सुचारु रूप से सब रस्में संपन्न हुईं। कुछ दिनों के बाद सीतम्मा को ससुराल बुलाया गया। वह वहां कुछ समय तक रही। ससुराल में युगादि, दिवाली आदि पर्वों का न्योता दामाद को भी था। उसका वहां खूब आदर-सत्कार हुआ, वर-वधू की आरती उतारी गई। कुछ दिनों बाद कन्या पुष्पवती हुई। ऋतुशांति समारोह भी संपन्न हुआ। वधू को ससुराल पहुंचाकर वर-वधू को सोने चांदी के आभूषण दिये गये। वस्त्र भी उपहार में प्रदान किये गये। सीतम्मा गृहणी का जीवन बिताने ससुराल पहुंच गई।

8

तिम्मम्मा ने एक बच्ची को जन्म दिया जिसका नाम सावित्री रखा गया। लोग प्रेम से उसे साती कहकर पुकारने लगे। पुष्पवती बनकर जब सीतम्मा ससुराल पहुंची तब साती नौ वर्ष की हो चुकी थी। यह लड़की मां को पड़ी थी। लड़की का विवाह अरिकोटार के देवरप्पा ओडेयर के पुत्र से हुआ था। चामराजनगर का ही पुराना नाम अरिकोटार था। तिम्मम्मा की और कोई संतान नहीं थी ; अतः लाडली बेटी सावित्री ही सर्वेसर्वा थी। सीतम्मा के साथ लड़की भी व्रत नियमादि रखती थी। आस्तिक, तत्रापि वैदिक परिवारों में ये अनुष्ठान श्रद्धा से संपन्न होते हैं। जोइस का खाता-पीता परिवार था, व्रत नियमादि बराबर रखे जाते थे। ये धार्मिक अनुष्ठान लोक कल्याणार्थ संपन्न होते थे। तिम्मम्मा बहू से बेहद चिढ़ती थी। उस पर विष उगलती थी। क्योंकि इस शादी से पूर्व महादेव का रिश्ता और कहीं होनेवाला था। रिश्ते की बात जिस कन्या से चली थी वह तिम्मम्मा के मामा की पोती थी। सदाशिव दीक्षित को यह रिश्ता मंजूर न था। लड़की सुंदर न थी, लड़की के बंधु झगडालू थे। मामा पशुपति सांबशास्त्री को रिश्ता बढ़ाने की इच्छा थी। महाप्रभु ने भी यही आदेश दिया। इससे वह दूसरा रिश्ता टूट गया। यह कहा नहीं जा सकता कि रिश्ते के टूटने में सांबशास्त्री की संपत्ति व राजदृष्टि का हाथ न था।

पर यह कोई अनहोनी बात न थी। ऐसे संदर्भ में पति-पत्नी की दृष्टि एक-सी हो, यह जरूरी नहीं। हर व्यक्ति का संस्कार अलग हुआ करता है, धारणा अलग-अलग होती है। अतः तिम्मम्मा मैसूर के रिश्ते की विरोधी थी। रिश्ता टूटने का गुस्सा बहू पर उतारती थी। सबके प्रति जो क्रोध था उसे तिम्मम्मा बहू पर उतारने लगी।

ऋतुशांति समारोह के उपरांत पति के साथ बेटी सीतम्मा को विदा करते समय माता-पिता व अन्य सगे संबंधियों की आंखों से आंसू बहना स्वाभाविक ही था। यह मानव मात्र के लिए सहज है। परंपरा के अनुसार सीतम्मा भी पितामह पशुपति सांबशास्त्री के चरण छूने आई। शास्त्री विकल हो उठा। फिर सीख दी, "बेटी! ससुराल जा रही हो। सावधान, विवेक से काम लेना।" और सीतम्मा को विदा किया।

अब ससुराल में सीतम्मा के व्यवहार पर प्रकाश डाला जाय। सास, ससुर और पति के कोसने डांटने पर भी वह गुस्सा नहीं करती थी। उनसे हंसी-खुशी पेश आती थी। और किसी से वह हंसकर नहीं बोलती थी। पर-पुरुषों के साथ बोलती ही नहीं थी। अनिवार्य होने पर पुरुष का मुंह देखे बिना, बिना हंसे, सिर झुकाये कम से कम बातें करती। पति को ही

परमेश्वर मानती थी। सदा घर के काम-काज में लगी रहती, अच्छे कामों में समय बिताती, पुराण पुण्यकथा पढ़ती ; बुरी संगत कभी नहीं करती, बुरों से बोलती तक नहीं थी। दूसरों का अहित करने वाले भले ही उसे नहीं छेड़ें फिर भी उन्हें अपना परम शत्रु मानती थी। नौकरानियों से ज्यादा नहीं बोलती थी। वस्त्र आभूषणों के लिए कभी लालायित नहीं रहती। तीज-त्योहारों में आभूषण तो पहनती, पर भड़कीले वस्त्र कभी नहीं पहनती। गहनों को प्रदर्शित करने, पल्लू को हटाने वाली यह नहीं थी। अधिक साज-सिंगार नहीं जानती थी। सदा पतिव्रता नारियों के पुण्यचरित में मन लगाये रहती थी। किंतु पड़ोसियों को चिढ़ानेवाला एक अवगुण था उसमें। वह किसी से ज्यादा नहीं बोलती थी। दूसरों के यहां जाना वह पसंद नहीं करती थी। घर में किसी न किसी काम में लग जाती थी, सदा व्यस्त रहती थी। इससे दूसरे लोग उसे घमंडी समझ बैठते थे।

उसका पति उससे बहुत ही प्यार करता था। ससुर जी उसके व्यवहार से मुग्ध थे। सीतम्मा ने इस श्लोक को चरितार्थ कर दिया था ; "कार्येषु दासी करणेषु मंत्री रूपेच लक्ष्मी क्षमया धरित्री भोज्येषु माता शयनेषु वेश्या षड्धर्मयुक्ता कुलधर्म पत्नी।" किट्टा जोइस हर किसी की हां में हां मिलाते हुए सनकी बन बैठा था। अपने हाथों पले लड़के का सुखी पारिवारिक जीवन देखकर पार्वतम्मा बहुत ही खुश थी। छोटे भाई नीलकंठ जोइस के परिवार को इस तरह फलते-फूलते देखकर वेंकम्मा भी प्रसन्न थी। वह सरल स्वभाव की थी। पर तिम्मम्मा के मन से धुंआ उठता रहा। बहू के हर काम में तिम्मम्मा को दोष ही दोष दिखाई देते थे। एक दिन सीतम्मा ने हर दिन की तरह उषा काल में उठकर मुंह धोकर सिंदूर लगाकर घर के द्वार और वृंदावन को बुहारा, लीपा, पोता और रंगोली रचाई। उजाला होने के बाद तिम्मम्मा ने इसे देखा। चिल्लाने लगी, "यह क्या है री! नक्कासी कर रही है क्या? ओह! इसलिए कि यह काम हो जाय तो दूसरे काम करने पड़ते हैं? यह नफासत हम क्या जानें, माई? हम ठहरे गंवारिन, ये है नगर की नारीमणी! सब कुछ जानती है! समझाने पर मानेगी क्यों वह? मैं ही इस घर में रोटी तोड़ने पड़ी हूं। उठ चल अंदर। वरना मुंह का पानी उतार दूं। भाड़ में जाये तुम्हारा हुनर! किसने सिखाया तुम्हें घर का काम काज? कहती जाऊं तो अड़ती जाती है।" सीता के हाथ में चिकोटी काटकर, उससे रची रंगोली को पैरों से रौंदते हुए रंगोली भरे काठ के पात्र को उसके हाथ से छीनकर बुकनी को चारों ओर बिखेर दिया। सीता चुपचाप अंदर चली गई। हर दिन की तरह भोर सवेरे उठकर बाहर गये हुए सदाशिव दीक्षित धोई गीली धोती को हाथ में धरे, फूल और तुलसी की टोकरी उठाये घर लौटा। दरवाजे को देखकर उसने पूछा, "यह क्या है? आज शुक्रवार के दिन रची रंगोली को मिटा दिया तूने? रंगोली को बिखेर क्यों दिया?" रंगोली की सुंदर पतली रेखाएं अब भी जहां-तहां दिखाई पड़ रही थीं। यह रचना मेरी बहू की होगी, पर इसे मिटाने की क्या जरूरत थी। दीक्षित जब यह सोच रहा था, तो तिम्मम्मा बोल उठी, "यह सब आपकी बहू की कला है ; बोलकर मैं बुरी बनती हूं, बस। मैंने कहा भी क्या? रंगोली रचकर जल्दी उठो, नहाना है न।" यह काफी था,

शुक्रवार के दिन रंगोली को मिटाकर, उसे बिखेरकर, काठ के पात्र को फेंककर चली गई। उसे आप मामूली समझते हैं? कहना हो तो लाख हैं।" उसी समय साती अपनी भाभी से बोली, "भाभी! यहां क्यों खड़ी हो? चलो हम उपमा खायें। मां की झंझट है ही।" सीतम्मा ने कहा, "साती! मुंह धोकर आना, तुम्हें मैं उपमा दूंगी।" तुरंत साती आंगन में पहुंच गई और रंगोली को लेकर पति के साथ चर्चा कर रही मां से कहा, "तिम्मू! भाभी रोती हुई पूजागृह के चबूतरे के पास बैठी है। खाने के लिए कुछ मांगने पर "कुछ नहीं जा," कहकर मुझे भगा रही है।"

तिम्मम्मा : (पति से) देख लिया आपने, कैसी हठीली है वह? बच्ची खाने को मांगे तो उसे ऐसे भगाये? उसका बच्ची ने क्या बिगाड़ा? साती पर विष उगलती है। धन्य हैं आप! सिर मुड़ाते ही ओले पड़े ना! अपने रिश्ते के मोह में खोज-खोजकर लाये, तो अब मेरे गले पड़ी है।

सदाशिव : जाने भी दो, अभी लड़की है। इतनी सी बात का बतंगड़ क्यों बना रही हो?

तिम्मम्मा : मैं बढ़ा रही हूं बात, क्यों? मुझे क्या पड़ा है? सत्यानाश हो जाय। मैं बीच में क्यों पडूंगी? वह अभी लड़की है और मेरी बच्ची बूढ़ी?

बात करते-करते कपड़े सुखाने के लिए सदाशिव दीक्षित घर के पिछवाड़े में चला गया। उसी वक्त किसी काम के लिए महादेव अपने कमरे से बाहर आया। तब तिम्मम्मा बोली : क्यों रे महादेव? पत्नी के प्रताप को सुनते हुए अब तक कमरे में दुबके रहे! अब बाहर निकल रहे हो?

महादेव : मैं क्या जानूं छोटी मां? सीख देनेवाली तुम जब हो!

तिम्मम्मा : मैं हूं तो सही, पर उसे मेरी परवा कहां?

यह बात सुनकर महादेव बाहर चला गया। पर इस विवाद की कराल छाया शाम तक घर पर छाई रही।

एक दिन सीतम्मा यथावत् सवेरे ही उठकर आंगन को लीप-पोत कर मोटी लकीरों की एक छोटी-सी रंगोली रचकर अंदर चली गयी। इसे देखकर तिम्मम्मा चिल्लाने लगी : मवेशियों को दाग रही है क्या, इतनी मोटी-मोटी लकीरें खीची हैं। ठोकर खाकर कोई गिर न जाय। देखा नहीं जाता! यही शहरी नफासत है? यही सीख मायकेवालों ने तुम्हें दी है? तुम्हारी मां बड़ी चतुर है न! देखे तो तुम्हें यह सिखाया है, क्यों? शुक्रवार को कितनी नाजुक और सुंदर रंगोली रचती हैं बहुएं? यह सब सिखाने की बात है क्या? लाख सिखाओ एक ही बात है, तुम क्यों सीखोगी? कह-कहकर मैं थक गई, सिखा-सिखा कर हार गई। मुझे क्या पड़ा है, सत्यानाश हो जाय। मैं इसमें टांग क्यों अड़ाऊं? मुझे क्या चाहिए, दो रोटी। फलने-फूलनेवाले आप हैं, चाहे तो सीख ले, नहीं तो रहने दे। अभी परसों खरीदी है मैंने दस सेर रंगोली, आध पाव अनाज देकर। इस तरह तुम सब कुछ बरबाद ही करती रहोगी, तो हम जियें कैसे?

तुम्हारे बाप का माल है क्या? कितनी रंगोली बरबाद कर दी है तूने। अब बुहारकर साफ करो, नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं। तूने मुझे, समझा ही क्या है? अपने बाप के घर से गाड़ी भरकर लाई हो रंगोली, जो इस कदर बरबाद कर रही हो? डांटू डपटूं तो दांत निपोरकर आती हो, तुम्हें लाज-हया नहीं? भूल तुम्हारी नहीं, बदकिस्मत हम हैं। मिलते-मिलते ऐसे कुघर की बहू मिली।

पार्वतम्मा : तिम्मू! उसे कुलक्षण घर की बेटी और ऐसी-वैसी गालियां क्यों दे रही हो? काम करने का तरीका सिखाओ उसे। वह चुपचाप सुनेगी, तुम्हें जवाब नहीं देगी।

तिम्मम्मा : आप इसमें दखल न दें, सबक सिखा दूंगी आपको। आप ही की कुमक से वह फुदकती है। मेरे लिए क्या धरा है इस मनहूस घर में?

पार्वतम्मा : यह क्या? यों ही घर को मनहूस कह डाला! ऐसा नहीं कहते, मनहूस हो दुश्मन का घर! धर्मदेवता "अस्तु, अस्तु" कहते ही रहते हैं। न जाने कब क्या हो जाय?

तिम्मम्मा : सत्यानाश हो जाय! आप बचे हैं न अच्छे! बस काफी है। और कितने बचे रहे?

इस तरह सास-बहू लड़ पड़ीं! गौरी का त्योहार आया। सुमंगलियों में बांटने के लिए तिम्मम्मा ने बहू से सूप सजाने के लिए कहा। बहू ने मैसूर में बड़े-बड़े घरों में सूपों को सजते हुए देखा था। यह सोचकर कि उसी तरह यहां भी सजाना है उसने ऐसा ही किया। एक सूप के लिए नारियल कम पड़ा, तो बहू ने सास तक यह बात पहुंचाई।

तिम्मम्मा : अरी कलमुंही! सूप में नारियल रखने के लिए तुमसे किसने कहा था? तुमसे कौन पार पाये? घर में छोटे-बड़े कोई नहीं हैं पूछने के लिए? किसने तुम्हें अनुमति दी थी? अक्ल घास चरने गई थी क्या?

यह कहती हुई रोषावेश से तिम्मम्मा ने बहू के सिर पर एक नारियल पटक दिया। जोर से मार लगी। लड़की से दर्द सहा नहीं गया, वह जोर से कराह उठी। तिम्मम्मा फिर से चिल्लाने लगी, "शोर मचाती हो, राक्षसी? तुम्हें क्या हो गया? कौन-सी आफत आ पड़ी है, कलमुंही कहीं की?" उसने सीतम्मा के गाल पर जोर से चिकौटी काटी। हाथापाई में सीतम्मा की नाक पर चोट लगी। नथ नथनी से जा लगी। खून निकला। सीतम्मा कुछ नहीं बोली, चुपचाप उठकर अंदर चली गयी।

तिम्मम्मा अकारण ही सीतम्मा को सताती थी, गालियां देती, ताना मारती, नीचा दिखाती। घर में दो बूढ़ियां थीं—वेंकम्मा, पार्वतम्मा ; दोनों में से कोई दिन की रसोई बना देती थी। उनमें से कोई खाना परोसती थी, पर अधिकतर तिम्मम्मा ही यह काम करती थी। तिम्मम्मा रसोई नहीं बनाती थी। तिस पर यदि कभी-कभार रसोईघर जाती तो अनपका या अधिक पका भात, ज्यादा नमकवाली दाल, खट्टी तरकारी, बिना बघारी दाल रसोई घर से

निकलती। ऐसी रसोई बनाने के लिए उसे चार-चार सहायकों की जरूरत पड़ती थी। उन्हें चिल्लाकर कहना पड़ता था कि नमक इतना डालिए, इमली इतनी। उन्हें स्वाद जांचनेवालों की भी जरूरत पड़ती थी जिन्हें बताना पड़ता था कि इसमें नमक ज्यादा है, इसमें इमली कम है। अपने स्थान से कोई हिले-डुले तो बस वह बरस पड़ती थी, चीखती चिल्लाती, गालियां बकती और अंत में रसोई बिगाड़ती लोगों को भूखा मारती। भगवान को भोग चढ़ाने से पहले ही बेटी को बुला-बुलाकर खिलाती। अंत में रात को रसोई का जिम्मा सीतम्मा के पल्ले पड़ा। वह स्वादिष्ट भोजन बनाती थी। रसोई में किंचित हेराफेरी हो, तो सदाशिव दीक्षित भरपेट खाता नहीं था। इससे पार्वतम्मा चिंतित होती और खुद रसोई बनाने में जुट जाती। आते-आते उम्र बढ़ती ही है न? पहले ही बूढ़ी थी और आजकल कमजोर भी होने लगी थी। वेंकम्मा उम्र में इससे भी बूढ़ी थी। फिर भी दोनों बूढ़ियां हाथ बंटाती थीं। तिम्मम्मा की पाककला से सभी परिचित थे। अब इन बूढ़ियों की सहायता कौन करे? जब तक सीतम्मा मां न बने तब तक बूढ़ियां उसके हाथ का खाना नहीं खा सकतीं। इसी कारण उनमें से कोई वृद्धा रसोई बना डालती। रात के समय पार्वतम्मा की दृष्टि मंद पड़ती चली थी। इसलिए रात के वक्त घर में रसोई बनानेवाले कोई न थे।

सदाशिव : हमारी सीतम्मा शहर की है, समृद्ध परिवार की बेटी है। मायके में नौकर-चाकरों की कमी नहीं है। वहां आराम था। इससे थोड़े ही काम कराते थे! फिर भी रसोई, चौका-बर्तन सब कुछ उसे सिखाया गया है।

पार्वतम्मा : मैं भी वही कहती हूं। केवल रसोई ही नहीं बेटी का हर काम पक्का होता है। वह कोई काम नहीं जानती हो ऐसी बात नहीं।

तिम्मम्मा : ठीक है, ठीक है। आप ही की बहू समझदार है, होशियार है। चिराग लेकर उसे आप लोगों ने ढूंढ निकाला है न! मैं ठहरी सनकी, बुद्धू; रसोई नहीं जानती, कुछ भी नहीं जानती। मुझे बदनाम करने के लिए आप लोगों को बहाना चाहिए, जी भर गालियां दीजिए। गाली सुनने के लिए ही मैं जन्मी हूं। सब कुछ पिताजी के साथ तो खत्म हो गया। अब क्या धरा है? हर किसी से गालियां सुनकर, ठोकरें खाकर, एहसान की रोटी तोड़ रही हूं। हो गया कि अभी कुछ बचा है?

सदाशिव : मन में जो आये, बकती जाती हो। ख्वाहमख्वाह आसमान को सिर पर क्यों उठाती हो?

तिम्मम्मा : ऐसी ही हूं तो, उसी को रसोई बनाने दीजिए। मेरे लिए भी आसान है। आराम से खाऊंगी-पीऊंगी।

इस प्रकार यह निश्चय किया गया कि रात के समय सीतम्मा रसोई बनायेगी। सीतम्मा रात का खाना बनाती, सबको परोसती, चौका बर्तन रात को ही करती, दही जमाकर आप खाकर बाद में सोती। काम करने का उसका क्रम अनुकरणीय था। उसकी व्यवस्था और

उसके काम पर कोई उंगली नहीं उठाते थे। तिम्मम्मा इसे सह न सकी। बहू में कमी पाकर उसे चार गालियां सुनाने की ताक में वह रहती थी। छिद्रान्वेषण में लगे लोगों को कहीं न कहीं दोष दिखाई पड़ते ही हैं। कुछ करे तो गलत, कुछ न करें, वह भी गलत। हर काम में दोष निकालना, निंदा करना, खिल्ली उड़ाना, तिरस्कार करना ; मौका ढूंढकर सीतम्मा के मायके को जली-कटी सुनाना, रोजमर्रे की बात हो गई थी। बीच-बीच में साती का भी सताना असह्य हो उठता। एक दिन संध्या समय दाल और चावल पकाने के लिए चूल्हे पर बरतनों में पानी चढ़ाकर सीतम्मा कुएं से पानी भरने पिछवाड़े गई थी। साती ने इसे देख लिया। रसोई घर में घुसकर उसने चावल के बर्तन में मुट्ठी भर नमक डाल दिया। और वहां से फरार हो गई। सीतम्मा को इसकी बू तक नहीं लगी। वह पानी भरा एक घड़ा कमर पर संभाले, दूसरा हाथ में पकड़े रसोई-घर पहुंची और खाना पकाने में लग गई। घर के पुरुष यथावत नदी में स्नान, संध्या आदि करके लौटे, तो सब भोजन करने उठे। महादेव ने स्वच्छ कपड़े पहनकर संध्या की, फिर भगवान की आरती उतारी। सबके लिए आसन और पत्तल लगाया। उसने पत्तल पर पानी छिड़का और सब को भोजन करने बिठाया। मैसूर से आये हुए दो मेहमान और दस-पंद्रह वर्षों से इन्हीं के यहां खाने वाले उपाध्याय नारणप्पा के साथ सदाशिव दीक्षित भोजन करने बैठा। पिता की बगल में साती भी एक पत्तल पर बैठी। अचार आदि परोसने के बाद सीतम्मा ने सबको चावल परोसा सबके परिषेचन करके प्राणाहुति मुंह में रखने से पहले ही साती कह उठी, "बाबा! भात में नमक ही नमक है।" बड़ों के खाने से पहले बच्चों का खाना निषिद्ध था। बाकी लोगों ने जब परिषेचन ही नहीं किया था, तो साती को यह कैसे पता लगा कि भात नमक भरा है? लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ होगा? यह सुनते ही सबने पोहन लिया और मुंह में पूर्णाहुति रख ली। भात में नमक ही नमक था। भात को पत्तल में ही फेंककर सब उठ खड़े हो गये। फिर से भात बना और लोगों को खिलाया गया। सीतम्मा पर सबको गुस्सा आया।

सदाशिव : बहू! समझता था कि तुम पाक कला प्रवीणा हो, पर देखो अब क्या हो गया।

उपाध्याय : अभी लड़की है न, अनजाने में नमक डाल दिया होगा।

पार्वतम्मा : क्या बात है, सीता? तुम तो रसोई बढिया बनाती हो। भात में कभी नमक मिलाते हैं? चावल में नमक मिल गया था क्या?

सीतम्मा : नहीं तो, मैंने खूब धोकर बर्तन चढ़ाया था। पकाने के लिए खारा पानी भी नहीं रखा था। नदी का पानी ही चढाया था।

तिम्मम्मा : तब और किसी ने चावल में नमक डाल दिया क्या? कैसी चिकनी-चुपड़ी बातें करती हो, मुंह बंद करो। सबको भूखा मारा, डाइन ने। करमजली कहीं की! ससुर फूले नहीं समाते थे बहू की पाककला परिणति पर! और यह चढ़ गई आसमान पर! उस मनहूस घर से बहू लाकर यह झंझट मोल ली। कुलच्छनी! नमक क्यों मिलाया भात में?

यह कहते हुए उसने रसोईघर के चूल्हे में से जलती हुई लकड़ी खींच ली और सीतम्मा के बायें हाथ को दाग दिया।

सीतम्मा ने जीवन में कभी इस तरह की सजा नहीं भुगती थी। वह मायके में फूल की सेज पर पली थी। उसका हाथ बुरी तरह जल गया। साड़ी का पल्लू भी जल गया। पीड़ा से लड़की ने जोर से हाय मचाई। "जीभ चलाती हो, शूर्पणखी" कहकर तिम्मम्मा ने रोषावेश से जलती लकड़ी के पिछले हिस्से से बहू के सिर पर दे मारा। प्रहार से लड़की नीचे गिर गई। पार्वतम्मा ने बीच बचाव किया, "तिम्मू! ऐसे भी कोई मारता है? जान-बूझकर वह भात में नमक छोड़ेगी? भले परिवार की लड़की, और किसी घर में सुखी रहती। उसे लाकर इस तरह सताना कहां का न्याय है?" वह सीता को वहां से हटाकर ले गई, और उसे उस चंडी से बचाया। बिना खाये पिये सीतम्मा उन्हीं कपड़ों में रात भर कमरे में बैठी रही। हाथ पर लगे फफोले और सिर की चोट के कारण उसे बुखार चढ़ गया। रात भर जमीन पर पड़ी रही। घाव सूज गया, उसमें पीब भर गया। पकने में आठ-दस दिन लगे।

इस झगड़े के कई दिन बाद एक रात सीतम्मा थाली में पानसुपारी लेकर पल्लू से ढक कर पति के कमरे में गई। पान लगाकर पति को खिलाते समय पति का हाथ अचानक पत्नी के हाथ के घाव पर लग गया। सीतम्मा के मुंह से चीख निकल गई 'हाय!'

महादेव : क्या हुआ सीता? क्यों "हाय" मचा रही हो?

सीतम्मा : चोट लगी थी न, सूज गया है।

महादेव : चोट! कहां लगी? अरे, इतना बड़ा घाव! क्या लगा, कैसे लगा?

सीतम्मा : कुछ लग गया।

महादेव : आखिर क्या?

सीतम्मा : जलती लकड़ी।

महादेव : अरे, जलती लकड़ी लगी कैसे? कितना बड़ा घाव है! सुख संपत्ति में पली लड़की! इस तरह काम करेगी तो लगेगा ही।

सीतम्मा तब तक चुप थी। अब उसे संकोच हुआ। लज्जा और सास के भय से उसका मुंह विवर्ण हुआ, आंखों में आंसू आये। बंद दरवाजे की ओर देख-देखकर आंखें पोंछकर चुप रह गई। महादेव भी यह सोचकर कि पत्नी की चुप्पी के पीछे कोई कारण होगा जिससे वह भय व लज्जा से कुछ नहीं बोल रही है, आप भी चुप रह गया। दूसरे दिन तीसरे पहर जब पुरुष घर में नहीं थे तब तिम्मम्मा ने पूछा, "सीता! कमरे में कल रात बहुत कानाफूसी हो रही थी, बहुत बातचीत चल रही थी। किस किले पर धावा बोलने की तैयारी चल रही थी? पति-पत्नी मिलकर मुझे ही घर से भगा देना चाहते हो? वह प्रायश्चित भी कर लूंगी। लड़की को साथ लेकर चलूंगी और कहीं डूब मरूंगी। मेरे इस घर में रहने से ही यह सारी मुसीबत है। मैं नहीं रहूंगी। ऐसे पति-पत्नी को मैंने कहीं देखा नहीं। यह राक्षसी चुप रहनेवाली थोड़े ही है, कान भर-भरकर पति को वश में कर लिया है। मैं क्या कुछ नहीं जानती? मैसूर की

हजार हरजाइयों की जगह ली इस अकेली ने। यह क्या-क्या नहीं जानती? मैंने भी स्त्रियों को देखा है, पर ऐसी औरत को कहीं नहीं देखा। बता, क्या बोल रहे थे, वरना खूब मरम्मत कर दूंगी तेरी।" इस तरह मनगढ़ंत निर्लज्ज बातें कर रही सास का जवाब सीता कभी नहीं देती पर आज सीता को बहुत दुख हुआ। सास ने उसे मैसूर की वेश्याओं से तुलना की थी, पति महादेव पर आरोप लगाया था। उसने कहा -- माई! गुस्सा क्यों करती हैं? मैंने किसी की बुराई नहीं की।

तिम्मम्मा : जवाब देने की हिम्मत आ गई तुममें? तुम्हारे पति ने सिखाया है यह सब कुछ? उसे भी अपना बना लिया है तूने। घर-बार हथिया लिया तुम लोगों ने। मेरे पिता की सारी जायदाद हड़प ली, अब यहां से मेरी निकासी भी कर लो। पेट ही न भरना है मुझे, एक धोती, एक रोटी पर रखा है मुझे। अब इसे भी बंद कर दो, भगा दो घर से। पति से सांठ-गांठ करके क्या बिगाड़ लेगी तू मेरा? मैं भी सब कुछ देख रही हूं, वरना तुम लोगों को सबक सिखा देती।

साती : मां, भाभी भैया से कह रही थी कि मैंने भात में नमक डाला था। उनके कमरे की बांस की अटारी पर मैं बैठकर उनकी बातें सुन रही थी। यह सब को गाली दे रही थी।

सीता : मैंने किसी को गाली नहीं दी। यदि मैंने ऐसा किया है, तो मेरे मुंह में कीड़े पड़ें।

तिम्मम्मा : तब मेरी बच्ची झूठ कह रही है, क्यों? अपने पति महोदय से तुम क्या शिकायत करोगी और वह या तुम क्या बिगाड़ लेंगे हमारा? साती ने भात में नमक डाला है? क्या ही खूब? क्या तुमने उसे नमक छोड़ते हुए देखा? नहीं तो यह आरोप उस पर क्यों लगा रही हो? साबित करो, नहीं तो मैं तुम्हें यों ही नहीं छोड़ूंगी। कान काटके हाथ में रख दूंगी। तुमने मुझे क्या समझा है? आज उन्हें लौटने दो घर! दोनों में से एक फैसला कर देंगे। उस अबोध लड़की ने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा? चाहे जो हो जाय, तुमसे मेरी कौन-सी ताजपोशी हो जायेगी? आज उसकी शिकायत कर रही हो, कल मेरी करोगी। तुम्हें किसकी परवाह है? आ री इधर, सब कुछ मचाकर गुमसुम घूमती है। उन्हें घर आने दो, या तो तुम रहोगी या मैं।

सीता : (सास के सामने आ खड़ी होकर) मैंने कुछ नहीं कहा, माई!

सदाशिव : (घर लौटकर) घर में शोरगुल खत्म होने का नाम ही नहीं लेगा क्या?

तिम्मम्मा : आपकी बहू की शिकायत है कि उस दिन साती ने भात में नमक छोड़ा था। आप साती ही से पूछ लीजिए। मैं तो बुरी हूं, सबकी दुश्मन!

साती	:	हां पिताजी! कल रात भाभी भैया से बता रही थी।
सदाशिव	:	तुम कैसे जानती हो?
साती	:	भैया के कमरे में बांस की अटारी पर बैठकर कल रात मैं सुन रही थी। भाभी हम सबको गाली दे रही थी।
सदाशिव	:	गालियों की बात रहने दो। क्या, उसने यह कहा कि तुमने भात में नमक मिलाया? इतना कहो।
साती	:	कुछ फुसफसा रहे थे, ठीक तरह से सुनाई नहीं पड़ा।
सदाशिव	:	छीः उनके कमरे की अटारी पर बैठकर छिपकर बातें सुनती है? तुम्हें शर्म नहीं आती? पति-पत्नी के सोते समय क्या ऐसा कोई करता है? अटारी पर बांस दूर-दूर में लगी हुई है। उन पर मिट्टी भी बिछाई नहीं गई। तुम स्त्री बनने जा रही हो, ऐसा नहीं करना है तुम्हें!
तिम्मम्मा	:	आप इसी को डांटते हैं, उस अबोध बालिका को! उस पूतनी ने जो बका था उसे भुला दिया! उस लड़की के पीछे ही पड़े हैं आप!
सदाशिव	:	कही-अनकही, सारी बातों को लेकर चलती हो। साती खुद कह रही है कि उसने ठीक नहीं सुना। पति-पत्नी के सोते समय इस लड़की द्वारा छिपकर उनकी बातें सुनना पहली भूल है। आगे-पीछे सोचे बिना बोलना ठीक नहीं। बोलते दो ही लोग हैं, पर देखते हैं अनेक। इन निर्लज्ज बातों को सुनकर पड़ोसी क्या कहते होंगे? चुप भी रहो, कोई सुने तो हंसेंगे।
तिम्मम्मा	:	हम हंसी के योग्य ही बने हैं न? बेइज्जत करके बाहर करने की प्रतीक्षा में हो तुम लोग।

इस शोरगुल से तंग आकर दीक्षित घर से बाहर निकल गया। इस पर विचार किये बिना कि पति बहू का पक्ष ले रहा है या न्यायोचित बात कह रहा है, तिम्मम्मा दिन भर गरजती रही, घरवालों को गालियां सुनाती रही और रोषावेश में बाल बिखेरकर, सिर पीटकर एक कोने में सो गई। खाने के लिए नहीं उठी। सीतम्मा ने रात को रसोई बनायी, सबको परोसा। सास ने भोजन नहीं किया, इसलिए उसकी प्रतीक्षा में आप भी रसोई घर के चूल्हे के सामने सो गई। उसे नींद नहीं आई, भोर से शाम तक परिश्रम करके वह थक गई थी। पिछली रात पति-पत्नी के कमरे में सोते समय उनकी बातों को छिपकर सुननेवाली साती ने बेहयाई से गली कूचे में ढिंढोरा पीट दिया था। शर्म के मारे सीता गड़ी जा रही थी। भूखे व्याघ्र के समान खाली पेट सोई हुई सास सवेरे पता नहीं क्या गुल खिलायेगी? सीता को यह भय भी था। इन सारी चिंताओं से त्रस्त सीता सो न सकी। मायके में मृदु शय्या पर सोती थी यह सुकुमारी। ऐसी कोमलांगी भला इस कठोर भूमि पर सो भी कैसे सकती थी?

सवेरे भी किसी के जगाने पर न जगनेवाली मायाविनी तिम्मम्मा ने दोपहर के बाद

उठकर स्नानागार में भात और खट्टी चटनी अलग से बनायी। किसी से बिना बोले अंगार बरसानेवाली यह हठी स्त्री बरतनों को पटकती, पत्तल लगाकर खुद खाने बैठ गई और "आओ मेरी बेटी साती! खाओ" कहकर पुत्री को बुलाया और उसे भी खिलाया। बरतनों को चौके में रखकर पड़ोस के घर में पहुंची और वहां सारी बातें बढ़ा-चढ़ाकर सबको बताईं, खरी-खोटी सुनाई और गप्पें मारने लगी।

9

कुछ ही दिनों के बाद ऋषि पंचमी आई। पार्वतम्मा और वेंकम्मा के लिए यह पर्व था। इसलिए समय पर स्नानादि से निवृत्त हो कर रसोई बनाने में वे असमर्थ थीं। दोनों बूढ़ियां नदी किनारे गईं। व्रत के मुताबिक 360 बार मृत्तिकाशौच, 360 बार दंतधावन, 360 बार स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर उनके घर पहुंचते-पहुंचते संध्या के चार बज चुके थे। बूढ़ियों के लिए उपवास था, तो उन्होंने दोपहर की रसोई नहीं बनाई। व्रत-त्योहार का खाना बनाने की अर्हता रखनेवाली किसी स्त्री के अभाव में सीतम्मा ही रसोई में लग गई। उस दिन कई रिश्तेदार और मेहमान आये हुए थे। सदाशिव दीक्षित ने कहा, "सीतम्मा! कल विनायक चौथ थी, मोदक-दान के लिए योग्य ब्राह्मण नहीं मिले। आज ब्राह्मण स्वयं पधारे हैं। मोदक बनाओ, मोदक दान दें। आज भी त्योहार ही है। भोग के लिए मूंग की दाल की खीर और नींबू का भात भी बनाना।" सीतम्मा को खुशी हुई। चलो, ससुर जी को उसकी रसोई में इतना भरोसा तो है। उनके इच्छानुसार वह स्वादिष्ट रसोई शीघ्र बनाकर तैयार करना चाहती थी। उसने साग तरकारी छीलकर तैयार रखा। नारियल फोड़कर, खुरचनी में खुरचकर एक काठ की कटोरी में रखा। फिर गुड़ की बुकनी बनाकर उसे भी एक काठ के बर्तन में ढककर रख दिया। साती भी भाभी के साथ रसोई बनाना चाहती थी। वह रसोई घर के इर्द-गिर्द मंडरा रही थी तो उसने सीतम्मा को नहाने जाते देखा। उसने नारियल के छीलन और गुड़ को मिलाया और उसे तेल के कड़ाहे में भूनने लगी। स्नान करके सीता लौटी। इसे देखकर उसने कहा, "सातम्मा! स्नान किये बिना इस काम में नहीं लगते। अभी से नारियल और गुड़ को क्यों मिला दिया? ससुर जी ने कहा है, इसे भोग चढ़ाकर दान में देना है। नहा-धोकर ही यह सब तैयार करना है।" ''सब रसोई तुम्हीं बनाओ" कहते हुए साती निकल पड़ी। सीता ने रसोई बनायी, मोदक बनाये। पुरुष स्नान-आदि से निवृत्त होकर खाने के लिए पत्तल पर बैठे। सदाशिव दीक्षित ने विनायक प्रीत्यर्थ मोदक दान दिया। ब्राह्मणों को परोसा गया। सबने पोहन किया, फिर खाने लगे। सदाशिव दीक्षित भी खाने बैठे। रसोई की तारीफ करते सब खाने लगे। सीता मोदक लाई और सबको परोसने लगी। मोदक खाने लगे तो, पहले कौर में ही कंकड़ के कारण सबके दांत बजने लगे। भराव रेत से भरा था, उसे खाना नामुमकिन था। सबने मोदक को फेंक दिया। सीता के मामा भी खानेवालों में से थे। उसने व्यंग्य किया, "क्यों सीतम्मा, इतनी रेत हनुमान द्वारा मंगाई क्या?" ससुर ने पूछा, "भराव को ढके बिना खुला छोड़ा था या ऊपर से मिट्टी गिरी थी? इतनी सारी बालू आई कहां से, सीतम्मा?" उसी

समय हर वक्त बीच में बोलनेवाली साती टपक पड़ी, "बात यह नहीं बाबा! खुरचनी में भाभी ने नारियल का छीलन रखा था। उसे काठ की कटोरी में डालते वक्त वह नीचे गिर गया। बर्तन मांजने के लिए वहां महीन रेत रखी हुई थी। छीलन उस पर गिर पड़ा। भाभी ने ऊपर-ऊपर से रोलकर उसे लिया और गुड़ से मिलाया। मैंने लाख समझाया कि वह रेतीला है। उसने मुझे वहां से खदेड़ दिया।" सदाशिव दीक्षित बहुत ही खीज उठे, "उस छीलन को जाने देती। दूसरे नारियल को फोड़कर छीलती!" सीतम्मा कर भी क्या सकती थी? दीवार की ओर मुंह करके सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही। वह डर के मारे सोच रही थी कि सासुजी से अब क्या सजा मिलेगी? उसका डर सच निकला। झगड़ालू तिम्मम्मा कमरे में आई और बहू को देखकर बोली, "तुम्हें अक्ल भी है? नारियल के भराव में रेत क्यों मिलाया? सब कुछ सत्यानाश हुआ न! अपने बाप के घर से चीजें लाई थी क्या? सारे मोदक तुम्हीं को खाने हैं। जब तक उन्हें खायेगी नहीं तुम्हें और कुछ नहीं मिलेगा।" मनमानी गालियां दी, अतिथि अभ्यागतों के सम्मुख सीतम्मा का अपमान किया। बहू के मायके वालों को खूब जली-कटी सुनायी। सीतम्मा के मामा ने प्रतिवाद किया, "माताजी! लड़की के मायके वालों को क्यों कोसती हो? यह ठीक नहीं। कोई भराव को रेत से क्यों भरेगा? लड़की अनजान है, भूल हो गई। रेत पर गिरे छीलन को नहीं उठाना था। गलती हो गई। चाहें तो अपनी बहू को सीख दीजिये, उसके मां-बाप को खरी-खोटी मत सुनाइये।" तिम्मू उस पर टूट पड़ी, "हमारे घर के मामलों में आप क्यों टांग अड़ाते हैं? आखिर आप हैं कौन? और कहीं रोटी न मिली होगी, यहां आ गये! खा लिया न? आपको और क्या चाहिए? हम ऐसे ही सही, मायके वालों को गाली देते हैं, दूसरों की निंदा करते हैं। आपसे मतलब? अपना घर उजाड़ा, हमारा घर उजाड़ने के लिए यह रिश्ता जोड़ा। यह सब उन्हीं के कुमंत्र, उन्हीं के उकसाने का फल है!" मेहमान की परवाह न कर इस तरह वह बकती रही।

सदाशिव : यह तू क्या बक रही है उनके सामने? क्या खूब! दस-हजार स्वर्ण सिक्के दें तब भी वे हमारे घर आयेंगे क्या? क्या कहती है? शंकरप्पा जी! बुरा न मानिये, गुस्से में मत आइये। उसके स्वभाव को समझने की कोशिश कीजिये।

इस डाइन की गरज से सीतम्मा थरथर कांपती हुई कहीं दुबक गई। उसे सास ने और कुछ खाने को न दिया। सीतम्मा ने यथा अवसर उपवास किया। मोदकों के भराव को सास की आंखें बचाकर फेंक दिया और आवरण को खा गयी। उसकी पीड़ा का वर्णन करना संभव नहीं, उसे सहना और भी दुस्तर।

कुछ दिनों बाद एक और घटना घटी। सीतम्मा ने अपनी और अन्य स्त्रियों की साड़ियों को कपड़े सुखाने की स्वच्छ जगह सुखाया था। सवेरे स्नान के बाद साफ कपड़े पहनने के लिए साड़ी को तह करने के लिए हाथ में लिया तो देखा कि जगह-जगह साड़ी हथेली जितनी फट गई है। उसे खरीदे सप्ताह भर हुआ था, बस। साड़ी आठ हाथ की थी और बहुत ही

बढ़िया। बेटी के लिए मायके वालों ने भेजी थी। उसकी चौड़ाई, उसका रंग, किनारा और उसके पल्लू में अद्भुत मेल था। साड़ी बहुत मजबूत थी। उसे पहनकर जब सीता ने सास को प्रणाम किया था तभी से उस महामाया की आंखें लाल हो गई थीं। हर मौके पर वह ताना मारती, "उसे किस चीज की कमी है? जो साड़ी चाहे मायके से मंगा सकती है। चाहे तो और भी महंगी साड़ियां मंगा सकती है। दिलाने वाले हैं न। मुझे पूछनेवाले कौन हैं? बाप-नाना को राजा साहब से सब कुछ मिला है। मेरा बाप गरीब है। ऐसी संपत्ति हमें कहां से मिले?" इस तरह मौके-बेमौके किसी भी बहाने से बहू पर ताना मारती थी। इस साड़ी पर उसकी आंखें गड़ी हुई थीं। अब पता नहीं कैसे साड़ी बर्बाद हो गई थी! इसे पहन नहीं सकती थी, दूसरी साफ साड़ी घर में नहीं थी। घर में ऐसे बहुत से काम थे जो स्वच्छ वस्त्र पहनकर ही संपन्न होने थे। उन्हें नहीं करने पर सासू मां आग उगलने लगती। अपने संकट का बयान करना भी कठिन था, सहना भी कठिन! ऐसी स्थिति में क्या किया जाय? पहनी हुई गीली साड़ी को ही खूब निचोड़कर, उसी को पहने भीतर गई। सारे काम संपन्न करके दूसरे कपड़े पहनने के बाद गीले वस्त्रों को उसने सुखाया। फटी साड़ी को छिपाकर रखा, यह बात किसी से नहीं बताई। सब कुछ सहकर चुप रही।

कुछ दिनों के बाद और एक पर्व आया। स्नानागार जाने से पहले सीतम्मा ने अपने सोने का कमरबंद और गले का गहना उतारकर नमक-मिर्च के ताक पर रखा था। दोनों गहने सीतम्मा को मायके से मिले थे। स्नान करके अंदर जाकर देखती क्या है कि हार की सात लड़ियों में से तीन लड़ियां गायब। कमरबंद के दो टुकड़े वहां पड़े हैं, सीतम्मा की कमर से चार उंगलियां कम माप के हैं। इसे देखकर सीता को बहुत दुख हुआ। दुखी होने से क्या लाभ? वह किसी के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठा सकती थी। वह चुप रह गई। रात को पति से कपड़े और गहनों की दुर्दशा की बात बताई और रो पडी। महादेव ने पत्नी की बात सुनी, दो चार बार छिः-छिः कहकर चुप रह गया। वह और कुछ नहीं कर सकता था। पुराने जमाने में पति-पत्नी आयु में कितने भी बड़े हों, कितने ही वर्षों से साथ-साथ रह रहे हों, बड़ों के सामने किसी के विरुद्ध आवाज नहीं उठाते थे। एक तो लज्जावश ऐसा नहीं करते थे, दूसरे उन दिनों विश्वास किया जाता था कि मालिक ही परिवार के सदस्यों की देखभाल करता है। ऐसी स्थिति में पत्नी की तरफ से पति और पति की तरफ से पत्नी के बोलने, शिकायत करने से मालिक का अधिकार ढीला पड़ जाता था! अतः पिता से इस बात को छेड़ते हुए महादेव संकोच करता था। सबसे ज्यादा बात का बतंगड़ बनानेवाली सौतेली मां का डर भी था। अतः इन समस्याओं के कारण कष्टों को चुपचाप झेलना ही आसान दिखता था। बात छेड़ने से लोकनिंदा और अन्य आफतों की आशंका को परखकर वह चुप रह गया।

रात के वक्त नियमित रूप से सीतम्मा ही रसोई बनाकर परोसती थी। एक रात दो-तीन लोगों ने भोजन नहीं किया तो बहुत भात बच गया। यह देखकर तिम्मम्मा चिल्लाने लगी, "अरे अपव्ययी! चावल अपने मायके से लाई है? बासी भात फेंकने की बजाय, तुम्हीं को

खाना होगा। नहीं तो उसकी पोटली बनाकर तुम्हारे सिर पर बांधूंगी।" सीतम्मा डर गई और दूसरे दिन प्रातः बासी भात खाया। रात को भी इसी का भोजन था। उसे बासी चीजें खाने की आदत न थी। उसने दोनों जून पाव डेढ़ पाव, बासी भात खा डाला, फिर भी तीन पाव तक का भात बच गया था। पड़ोसिन बूढ़ी सुब्बम्मा के साथ सीतम्मा यदा-कदा अपना दुखड़ा रोया करती थी। कोई भी व्यक्ति हो अपने दुख को दूसरों से प्रकट न करे तो उसकी पीड़ा असह्य हो उठती है। दुख को भीतर ही दबाकर उसकी जुगाली करते रहे, तो वह घनीभूत दुख बहुत कष्टदायी होता है। जब हम दूसरों से अपना दुख प्रकट करते हैं और जब वे हमसे सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं तो हमें इस बात की तसल्ली होती है कि हम अन्याय नहीं कर रहे हैं और दूसरे लोग भी हमारे दुख को स्वाभाविक समझते हैं। ऐसे समय हमारी दुखगाथा सुनकर श्रोता की आंखें सजल हो जायें या उनकी वाणी विह्वल हो जाय तो हमारे दुख का वेग कुछ कम हो ही जाता है। सीतम्मा जब अपनी राम कहानी सुब्बम्मा को सुना रही थी तो बासी भात का प्रसंग भी आया। इस लड़की पर टूटी आफत से बहुत दुखी होकर सुब्बम्मा ने सुझाया कि बासी भात को ठंडे पानी में खूब धोने से उसका दोष और उसकी बू दोनों घट जाते हैं। ऐसा ही करके सीतम्मा ने प्राणों की रक्षा की।

कुछ समय बाद, एक दिन सीतम्मा ने रसोई बनाई और सबको परोसा। भात में चावल के दाने के बराबर बाल थे। खाना सबको दूभर हो गया। खीझकर सदाशिव दीक्षित ने कहा, "सीतम्मा जब कभी रसोई बनाती है तो उसमें एक न एक दोष रहता ही है। इसका क्या कारण हो सकता है, मैं नहीं जानता!" महादेव को चुप रहना था। ऐसा न कर उसने कहा, "दाने-दाने के साथ बाल है।" तिम्मम्मा बोली, "तेरी पत्नी रंभा की रसोई की करामात है! यहीं बाल बनाओ, साफ किये बिना यहीं रसोई भी बनाओ। गुच्छे-गुच्छे भर बाल खिला दिए हैं सबको।" महादेव फिर भी चुप न रहा। कह उठा, "भात में मिले केश छोटे-छोटे हैं, बालिश्त भर से बड़ा एक भी नहीं है।" तिम्मम्मा लाल आंखों से घूरती हुई उस पर टूट पड़ी, "क्यों रे? पत्नी की वकालत करता है? तुम्हारी बीवी के बाल लम्बे हैं और मेरी बिटिया के छोटे, यही कह रहे हो न तुम? तब मेरी साती ने भात की हंडी में बाल डाले? बेचारी अपने आप खेलती कहीं पड़ी रहती है। उससे यह क्यों जलती है? उस लड़की को मैं क्या करूं? उसे कहां ढकेल दूं? तुम लोगों से मेरा अब निभ नहीं सकता। कहीं नदी में ढकेल दूंगी उसे और आप भी कूद पड़ूंगी। यह जुल्म मैं सह नहीं सकती। बात-बात पर शिकायत, मुझ पर, नहीं तो उस लड़की पर। तुम भी क्या करोगे? सब कुछ मिल गया। हमें बाहर निकालना भर बाकी रह गया है। तब खुशी मनाओ। बाप-बेटे की आंखें मुझ ही पर गड़ी हैं न।" बेरोक टोक वह बकती गई। "छोटी मां! मैंने कहा ही क्या? सिर्फ इतना कि बाल लंबे न थे, तो आपने बात का बतंगड़ बना डाला," यह कहते हुए महादेव बाहर चला गया। बाद में गालियों से सीतम्मा की खूब सेवा हुई। तिम्मम्मा छाती पीटकर, जमीन ठोंककर खूब रोई-धोई।

सास और ननद को तैल अभ्यंजन सीतम्मा को ही कराना पड़ता। बाद में ही वह अपने

सिर पर तेल लगा सकती थी। उसे सबको तेल मालिश करनी पड़ती थी। पर उसे तेल कोई नहीं लगाती थी। कटोरी भर तेल भी उसे नसीब नहीं होता था। वह सबको नहलाती थी पर उसे दो घड़े पानी नहीं मिलता था। बर्तन भर शिकाकाई पीसकर रखती थी तो भी उसे कंजा जितना नहीं बचता था। उधर तेल की कटोरी खाली, इधर शिकाकाई गायब! तिस पर आरोप कि नहाने के लिए बहू को तेल नहीं पूरता, शिकाकाई नहीं पूरती। तीज त्योहारों में मिठाई बनती, तो तिम्मू सब कुछ उठाकर रखती, अतिथि-अभ्यागतों को आप परोसती। अंत में खानेवाली सीता को कुछ भी न देती, चखने को भी नहीं। पार्वतम्मा या वेंकम्मा पूछती कि सीता को मिष्ठान्न परोसा कि नहीं। उत्तर मिलता, "मैं भूल गई, उसे देने की या परोसने की क्या जरूरत? वह खुद लेकर खाती है। बेचारी को कुछ भी नसीब नहीं होता। पर आश्चर्य कि मिठाई अपने आप गायब हो जाती है! आग लगे उसकी चाल-चलन में। हमें मिष्ठान्न की बू तक लगने नहीं देती, बस अपने पेट में ही झोंकती है सब कुछ। मेरी बेटी को और मुझे चखने तक नहीं देती। मिठाई जब बनी तब पत्तलों में जो परोसी गई बस फिर उसके दर्शन तक किसी को नसीब क्यों हो। सब पति-पत्नी स्वाहा कर देते हैं। वह मायांगना कोई मामूली है? सब कुछ मायके में ही पीसकर पी गई है। तभी न यहां आ टपकी है! वह लंबी कहानी है। मुंह खोलो, तो राक्षसी बनकर टूट पड़ती है। जाने दो, सत्यानाश हो जाय, हमें क्या पड़ा है?" इस तरह तिम्मम्मा दोषारोपण करती रहती थी।

10

इस प्रकार सीतम्मा सास का जुल्म सहकर भी अपने सतीधर्म की पूरी रक्षा करती हुई दिन बिता रही थी। गांववालों की प्रार्थना मानकर सदाशिव दीक्षित रात के समय गांव के ईश्वर मंदिर में प्रवचन करने लगा था। वह पंडित, स्वधर्मरत, सात्विक और अनेक रहस्यों का मर्मज्ञ अंतर्मुखी पुरुष था। अतः उसका प्रवचन पंडित-पामर दोनों का रंजन करता था। प्रवचन सुनने के लिए आस-पास के ग्रामीण भी आया करते थे। सीतम्मा को छोड़कर घर की अन्य महिलायें भी प्रवचन में जाती थीं। एक दिन प्रवचन में पतिव्रताओं के चरित्र पर जोर दिया गया। दूसरे दिन द्वादशी थी, प्रवचन न था। प्रातःकाल ही भोजन हो गया। महिलाएं ग्राम की परिक्रमा करके लौटीं। तीसरे पहर, जोइस के दालान में तिम्मम्मा, वेंकम्मा, पार्वतम्मा, पड़ोसिन सुब्बक्का, दूसरी पड़ोसिन राधाबाई आदि एकत्र हो गईं। बीच में पलाश के पत्तों का ढेर था। पत्तल बनाती हुई सभी प्रवचन का गुणगान कर रही थीं। दीक्षित द्वारा प्रस्तुत पातिव्रत्य-धर्म तथा पतिव्रताओं के चरित की व्याख्या की खूब प्रशंसा हो रही थी। एक महिला ने कहा, "जीना है तो ऐसे जीओ वरना जनम ही व्यर्थ है। चार लोग वाहवाही न करें, वह जिंदगी भी कैसी जिंदगी है?" दूसरी ने कहा, "सभी इस कोटि के महात्मा थोड़े ही बन सकते हैं। ऐसे महात्मा, जो वरदान या शाप दे सकें नजर नहीं आ रहे हैं। मिल भी जायें तो वह सब अब संभव नहीं है।" और एक ने कहा, "यह ठीक नहीं है" असंभव कहना गलत होगा। यह कलियुग है। युगधर्म की चर्चा करते हुए दीक्षित ने हर युग के लक्षण बताये हैं। कलियुग में युगधर्म के अनुसार ही जीना होगा। यही पर्याप्त है। पिछले युगों की ही भांति इस युग में भी चलें, यह आवश्यक नहीं।" चौथी स्त्री ने कहा, "बीते युगों में भी अच्छे-बुरे तो थे ही! सब पूर्वार्जित पुण्य के अनुसार होता है। नहीं तो पानी का बरसना, फसल का उगना कैसे संभव हो सकता है? अब भी ऐसी देवियां हैं। उन्हें हम दूर से प्रणाम करती हैं।" और एक गृहिणी ने जोड़ा, "सब कुछ पूर्वार्जित है, बुद्धि को भी प्राचीन कर्मों को अनुसरिणी कहने से कैसे चलेगा? बुरे मार्ग में चलकर, बुराई में डूबकर, 'यह मेरा प्राचीन कर्म है। उसी के अनुसार सब कुछ घटित हो रहा है। बुद्धि भी उसी तरह काम कर रही है, ब्रह्मा भी उसे बदल नहीं सकता। बुरा या भला सब ललाट लिखित है, उसे कोई मिटा नहीं सकता'—कहकर बुरे मार्ग पर चलने से रोकनेवाले कौन ?" उनमें से एक विदुषी ने कहा, "पूर्वार्जित कर्म कहकर मन को मनमाना करने के लिए मुक्त करना ठीक नहीं है। मन पर काबू रख के सन्मार्ग पर ही चलने का हम प्रयास करें, तो मन में कभी बुरी बात के सिर उठाने पर भी, वह मन में ही

भस्म हो जाती है।" एक चतुर महिला ने जोड़ा, "यदि पूर्वजन्म में अधिकतर दुष्कर्म ही किये हों तो, हमारा मन दृढ़ कैसे बनता है? दीक्षित जी ने बताया है कि मन में जो भाव पहली बार उपजता है वह जन्मांतर वासना से ही होता है। साथ ही मन पर काबू रखने के हम आदी हो जायें, तो कर्मफल भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार मन में ही लय हो जानेवाली वासना अगले जन्म में सिर नहीं उठायेगी। मन की उपज कार्य रूप धारण करे तभी उस कार्य का फल इस जन्म में नष्टप्राय न होकर अगले जन्म तक व्याप्त होता है। दीक्षित जी ने विस्तारपूर्वक यह पढ़कर सुनाया है।" और किसी ने कहा, "अजी! कलियुग में तो इस जन्म का कर्म फल इसी जन्म में मिल जाता है। अगले जन्म तक रुकता नहीं।" एक अन्य रमणी कह उठी, "पाप हो या पुण्य, बड़ी मात्रा में हो, तो उसका फल इसी जन्म में दिखाई पड़ता है। नहीं तो अगले जन्म में प्रकट होता है।" एक गृहिणी ने चर्चा का उपसंहार किया, "बुद्धि अपने वश में हो तो आगे भी नहीं जाता पीछे भी नहीं जाता।"

इस प्रकार जब ये स्त्रियां पत्तल बनाते-बनाते प्रवचन के विचार की अपनी-अपनी याददाश्त के मुताबिक चर्चा कर रही थीं, तो तब तक चुप्पी साधे वृद्धा वेंकम्मा ने कहा, "जन्मांतर का कर्मफल कहिए या बुद्धि को ही कारण ठहराइए, यह कैसे कहा जाता है कि अच्छे लोग केवल पहले जमाने में थे और अब नहीं? हमेशा अच्छे-बुरे दोनों होते हैं। मेरी मां थी, भागीरथी, वह किससे कम थी? तुम भी जानती हो न?"

भागीरथम्मा बोली, "क्यों नहीं! क्या मैं अरुन्दम्मा को नहीं जानती? वह आग जैसी पवित्र औरत थी! ऐसों को अब कहां ढूंढें? भविष्य में भी देखने को न मिलें।" फिर वेकम्मा अरुन्दम्मा की कहानी सुनाने लगी।

मेरी मां का नाम अरुन्दम्मा था। जो लोग इसे नहीं जानते थे वे उसे अरविन्दम्मा पुकारा करते थे। जब हम सब बच्चे थे तब सबको बिठाकर हमारे पिताजी पुरानी बातें सुनाते थे। जन्म-पत्री देखने पर मां का नाम अरुंधती निकला। उसी तरह नामकरण भी हुआ। अरुंधती पुकारना कठिन लगता था, तो लोग अरुंदम्मा पुकारने लगे। यह नाम जन्म नक्षत्र पर रखा गया था। बचपन से ही मां भगवान, आचार्य और बड़े-बूढ़ों के प्रति भक्तिभाव दिखाती थी। इस भक्तिभाव को उसने आजन्म निभाया। उसने कभी फूल-फल, वस्त्र-आभूषण आदि के लिए हठ नहीं किया था। सात वर्ष की उम्र से ही वह अच्छे वर के लिए रोज गौरी मैया की बड़ी भक्ति से पूजा करने लगी थी। फलस्वरूप उसे अच्छा पति मिला भी। मेरे पिता विद्या में जितने आगे थे वैसे ही गुणों में भी श्रेष्ठ थे। पिता पहले बहुत गरीब थे, पर मां से शादी करने के बाद मिट्टी भी सोना बनने लगी और वे धनी बन गये। मां से कठोर वचन नहीं कहते थे। बहू के चाल-चलन और गुणों से सास-ससुर खुश थे। वे हमेशा उसकी प्रशंसा करते थे, "भाग्य लक्ष्मी ने हमारे घर पधारकर उसे प्रकाशित किया है। रूप में साक्षात आदि-लक्ष्मी है। चरित्र भी उसके अनुरूप ही है।" उषाकाल में ही उठकर वह घर का सारा काम-काज कर लेती थी; स्नानादि से निवृत्त हो रसोई बनाती, नित्य गौरी पूजा, तुलसी

वृंदावन की पूजा करके सास-ससुर और पति को प्रणाम करती। संध्या समय भी यही कार्यक्रम था। हर दिन पति के बाद प्रक्षालन करके उस पुण्यजल को ग्रहण किये बिना भोजन नहीं करती। उस जल को कटोरी में भरकर रखती और पति के प्रवास पर रहते वक्त उसे ग्रहण करती। बड़े-बूढ़े भी यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे। सभी इससे डरते थे। मेरी मां के दो ही बच्चे हुए। मैं ही बड़ी हूं और नीलकंठ ही छोटा है। और बच्चे नहीं हुए। उसकी बात कभी खाली नहीं जाती थी।

बगल के घर में गोपाल नामक घरजमाई रहा करता था। बहुत दिनों के बाद इसे एक लड़का हुआ था। दोनों घरों के बीच की दीवार गिर गई थी जिससे बहुत परेशानी होती थी। मेरे पिता ने दीवार लगाने के लिए नींव खुदवाई, तो उस गोपाल ने सरकार को शिकायत करके मेरे पिता को बहुत सताया। पति की परेशानी से मां बहुत दुखी थी। गोपाल ने पिताजी की इज्जत को धक्का पहुंचाया जिससे पिता को बहुत क्लेश हुआ था। पति को बेइज्जती से बचाने के उद्देश्य से मां पड़ोसी के घर गई और गोपाल को समझाया, "गोपाल! तुम अभी युवा हो, फिर भी चिंता नहीं। दूसरों की बातों में आकर हमें कलंकित मत करो। मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं।" उस दुष्ट गोपाल ने मां से कहा, "यह नखरा और किसी को दिखाना। हरजाई जैसे हाथ मुंह बनाकर बोलने आई हो?" सुनकर मेरी मां रो पड़ी। दुख को दबाकर मेरी मां ने रौद्ररूप धारण करके शाप दिया, "रे गोपाल! मैं तुम्हें गालियां नहीं दूंगी। यदि तुम सही हो तो हम भूखे मरें, मेरे दोनों बच्चे जलकर भस्म हो जायें। पर यदि हम में सत्य है तो सुन, भगवान सूर्य साक्षी है। मैं सती हूं। तुम्हारे दोनों पैर कोढ़ रोग से नष्ट हो जायें। तुम्हारी जीभ ऐंठ जाये। तुम निरन्न, निर्जल स्थान में जान देकर अंतर्पिशाच बनोगे।" उसने रौद्र रूप धारण कर लिया था। कुछ दिनों के बाद गोपाल को बुखार चढ़ गया, दोनों पैर सूझ गये। उनमें दरारें पड़ीं और उनसे पानी बहने लगा। घाव गहरा हुआ, दोनों पांव सड़-गये। उनमें कीड़े पड़े और एक पैर गिर गया। उसी रात गोपाल विषम ज्वर से पीड़ित हुआ, उसकी जीभ ऐंठ गई। डाक्टर को दिखाने के लिए गाड़ी पर लिटाकर ले जा रहे थे, तो राम समुद्र से निकलकर चामराजनगर के मध्यमार्ग में तड़प-तड़प कर वह चल बसा। इससे बढ़कर प्रमाण की क्या आवश्यकता है।

इसके अलावा और भी एक विचित्र घटना घटी। हमारे धान की खेती करनेवाला काश्तकार वरदा आठ बोरे धान मापकर मां को सुपुर्द कर गया था। मेरी मां के सामने ही वरदा ने धान को मापा था। मेरे पिता गांव में नहीं थे, नंजनगूड गये थे। वहां से लौटने के बाद उन्होंने वरदा से बाकी बारह बोरे धान ला देने को कहा। उसने झूठ कहा कि बीसों बोरे धान उसने मां को सौंप दिये हैं। पिता उसे साथ घर लाये और मां के सामने ही उससे पूछा। बिना हिचकिचाये वरदा ने साफ कह दिया कि उसने बीस बोरे धान इसी आंगन में मापकर मां को सौंपे हैं। मेरी माता ने कहा, "अरे, तू झूठ बोल रहा है। साठ वर्ष की उम्र में तुम्हारी गोद में बच्चे ने जन्म लिया है। तुम्हारे झूठ का यह बच्चा साक्षी रहे। इस बात को पल्लू में

बांध रख।" काश्तकार मनमाना बकते हुए बच्चे को उठाकर वहां से चल पड़ा। एक रात जब उसकी पत्नी और शिशु सो रहे थे, दीमक खाये हुए शहतीर के धंस जाने से बच्चे का देहांत हुआ और पत्नी अधमरी बच गई। गांव में और आसपास के गांवों में बात फैल गई कि अरुन्दम्मा के शाप का यह फल है।

आसपास के गांवों में कोई बीमार पड़े या और कोई संकट का शिकार हो तो उन्हें हमारे घर लाते थे। मेरी मां मंत्र-पाठ कर नीम के पत्तों से तीन बार झाड़ती तो रोगी स्वस्थ हो जाता। इर्द-गिर्द के गांवों के निवासी मेरी मां का नाम लेते ही हाथ जोड़ते थे। मेरे दादा और दादी पहले ही चल बसे थे। कुछ वर्षों के बाद पिता को बुखार चढ़ा। वे भी चल बसे। मां को न जाने कैसे पता चल गया था कि पति अब बचनेवाले नहीं हैं। कंणागाल को संदेशा भेजकर अंतिम संस्कार को अच्छी तरह संपन्न करानेवाले ब्राह्मणों को बुला भेजा। पिताजी रात के एक बजे दैवाधीन होनेवाले थे, तो उस दिन संध्या को ही मां ने मुझे और नीलकंठ को पास बुलाया। और कहा, "नीलकंठ! बहन का ख्याल रखना। विधवा बनकर जीना उसके भाग्य में बदा था। उसे जीना ही पड़ता है। तुम पच्चीस साल के हो, पर अबोध हो। तुमसे वेंकू पांच साल बड़ी है पर वह भी मुग्ध है। तुम दोनों परिवार की रक्षा करना। बदनामी का शिकार कभी न बनना। यह चाबी ले लेना। तुम्हारे पिता बेहोश हैं। लक्षण अच्छे नहीं दिखते। मैं अपना कर्तव्य निभाऊंगी। माता-पिता का मोह अब त्याग दो।" मुझे और मेरे छोटे भाई को किसी तरह का अनुभव न था। मां की बात सुनकर हमें बहुत आश्चर्य हुआ। मां ने भाई को खाना परोसा, मुझे कुछ नाश्ता दिया। हम नहीं खा सके। तुरंत उठे और हाथ धो लिये। तब मां ने हम दोनों को पास बिठाया, सिर सहलाया, आंसू बहाकर दोनों को गोद में लिया। बाद में हमारे प्रति वात्सल्य और पारिवारिक चिंता से मुक्त हो गई। पति के बिस्तर के पास बैठ गई और समय-समय पर उनके मुंह में दूध या पानी डालती रही। उसी रात को पिताजी का स्वर्गवास हो गया। प्रतीक्षा कर रहे ब्राह्मणों ने कहा कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मण और पुण्यात्मा थे, अतः उन्हें संन्यास की दीक्षा दी जा सकती है। पर मां ने कहा, "वे बेहोश हैं, उनकी जीभ नहीं चलती। वे मंत्रोच्चारण करने में असमर्थ हैं। आपत्संन्यास देने का समय बीत चुका है।" पति के प्राण-पखेरू उड़ जाने के बाद वह उनके पैरों को पकड़े ही रही। कुछ ही समय के बाद कंणागाल से आये हुए पुरोहित को बुलाया और उनसे कहा, "स्वामी! मैं अपने पति से अलग नहीं रह सकती। पति के साथ ही अग्नि-प्रवेश करने का निश्चय किया है। उस क्रियाकर्म के लिए आवश्यक ग्रंथ मंगा लें। आवश्यक वस्तुओं की भी तुरंत व्यवस्था करें। पर सावधान, समय न टल जाय।" इसे सुनकर भाई और मैं बहुत दुखी हुई। हमारे लिए दुख असह्य था। हम बच्चों जैसे रो पड़े, "मां! पिता जी तो हमें छोड़कर चले गये। तुम भी चली जाओगी, तो हम अनाथ हो जायेंगे। ऐसा मत करो मां!" पर मां फिर हम से नहीं बोली। पति के चरणों से हटी नहीं। पुरोहित आये और बोले "माई! सुनते हैं कि खबर सूबेदार को भी पहुंचानी है।" मां ने कहा, "जिसे चाहो बता सकते हो।" इस तरह सहगमन करे तो शासन

की ओर से हल्दी, कुंकुम, पान, फूल, धोती का जोड़ा, पीतांबर आदि दिये जाते थे। यह भी विश्वास किया जाता था कि पति के साथ ही चितारूढ होने वाली स्त्री यदि ज्वाला का ताप न सहकर बाहर निकल आयेगी, तो राज्य का अमंगल निश्चित है। इसे रोकने के लिए बारूद भरे घड़े, बाण, तेल और घी के घड़े आदि चिता के मध्य भाग और दोनों पार्श्वों में रखने के लिए दिये जाते थे। इन सारी चीजों के साथ कस्बे के विशिष्ट अधिकारी भी आ पहुंचे। सवेरे पांच बजे तक आसपास के ग्रामीण एकत्र हो गये! मेरा अंदाज था कि बीस पच्चीस हजार लोग जमा हुए थे। आगे की क्रिया के लिए सारी व्यवस्था हो चुकी थी।

मां के मन में किंचित भी घबराहट न थी। स्नान से निवृत्त हो हल्दी साड़ी पहने, खूब हल्दी लगाकर, दो अंगुल बड़ा कुंकुम धारण करके, उसके नीचे चंद्र लगाकर, फूल खोंखे, चंदन का लेप करके ब्राह्मणों को यथा इच्छा दान दिया। फिर सुमंगलियों को हल्दी-कुंकुम, गंध पुष्प, साड़ी-चोली, सुसज्जित सूप, फल, दक्षिणा व तांबूल दान दिया। पुरोहितों के आदेशानुसार सारे कर्म संपन्न किये। छोटों को आशीर्वाद दिया, बड़ों को प्रणाम किया। उनकी अनुमति ली, फिर माला धारण किया और नींबू फल को हाथ में लेकर एक हाथ से खेलती हुई खड़ी हो गई। पिता जी को चिता पर लिटाया गया। चिता पर से एक वस्त्र लाकर मां की गरदन से लटकाया गया। अर्थी चली। एक हाथ से निंबू को उछालती हुई दूसरे हाथ से पति के पांव पकड़े मां चल पड़ी। इस महान दृश्य को देखने के लिए ग्राम-ग्रामांतर के लोग झुंडों में आ रहे थे। चिता तैयार सजी थी। श्मशान में किये जानेवाले कर्मों के संपन्न होने के बाद शव को चिता पर रखा गया। पूर्वनिश्चित स्थान पर मां को भी लिटाया गया। सहगमन करनेवाली स्त्री का मन चिताग्नि के ताप को न सह पाकर चंचल होने पर भी वह बाहर न निकले इसके लिए उसे खूब बांध दिया गया और उस पर वजन भी लाद दिया गया। चारों ओर आग की लपटें भभक उठीं। दूर से चिता पर तेल उलीचे जा रहे थे। 'महापतिव्रता' के नारे लग रहे थे, जनता का जय-जयकार बढ़ता गया। मां के चले मार्ग से उसके पदचिह्नों के धूल उठा-उठाकर सिर पर चढ़ानेवाले कितने लोग, आंखों से लगानेवाले कितने, 'जय-जय महामाता', 'आदिलक्ष्मी' के नारे लगानेवाले कितने तथा 'ऐसी महामाता चली गई' कहते हुए भक्ति और दुख से आंसू बहानेवाले कितने! चारों ओर कोलाहल ही कोलाहल! सबकी आंखें चिता पर केंदित थीं। तब एक चमत्कार देखने को मिला।

वहां एकत्र जनस्तोम के देखते-देखते चिता थोड़ी सी हिल उठी। उस पर लदे पत्थरों और लकड़ी का वजन टिक न सका। अरुंधती के समान मेरी मां सहसा उठी। चिता पर उसके उठते ही, इसे राज्य की बड़ी विपत्ति मानकर, इसी काम के लिए तैयार लोगों ने उसे फिर से आग में झोंकने की कोशिश की। वहां उपस्थित मामलेदार, अन्य अधिकारी गण, पुरोहित तथा वैदिक ब्राह्मण चिल्लाने लगे, "आह! कुछ अनाचार हो गया है।" एकत्र जनसमूह कांप उठा। उस चमत्कार का मैं क्या बयान करूं? क्षणमात्र में, इस ओर से उस ओर मुड़ने के समय में, पिता के पैर पर सिर रखके मां लेटी थी। तुरंत उसका कपाल फूट

गया। कुछ ही समय बाद पिताजी की कपाल क्रिया संपन्न हो गई। इस चमत्कार को देखकर एकत्र जनसमूह मेरी मां का नाम ले-लेकर नमस्कार करने लगा। अग्नि संस्कार की जगह पर लोगों ने जोड़ी समाधि बनायी। आप सब जानती हैं कि आज ग्रामनिवासी उसकी पूजा करते हैं और मनौती मनाते हैं। जैसे-जैसे मनौती करते हैं वैसे-वैसे भक्तों का काम होता है। हमारे घर के पिछवाड़े में खड़े हों तो एक पत्थर फेंकने के फासले में ये जोड़ी समाधि दिखाई पड़ती हैं।" वेंकम्मा ने अपनी मां की कहानी इस तरह सुनाई। वहां उपस्थित सभी ने उसकी प्रशंसा की, "महा पतिव्रता! उसके चरणों का ही भरोसा है।" उस मंडली में सीतम्मा भी बैठकर पत्तल बना रही थी। इस चरित को ध्यानपूर्वक सुनकर आंखों से आंसू बहाकर चुप रह गई।

दूसरे दिन से सीतम्मा सवेरे उठते ही पति के पैर छूती, घर का काम-काज करती, फिर नहा-धोकर, नित्य गौरी-पूजा करके सजाई गई थाली, कटोरी के साथ अरुन्दम्मा की समाधि पर पहुंचती, वहां पूजा-परिक्रमा, नमस्कार करके घर लौटती और बाद में भोजन करती। उस दिन से परम भक्ति से रोज यह अनुष्ठान करती। उसके इस भक्ति भाव का घर भर में सबको पता लग गया। धार्मिक प्रक्रिया थी, किसी ने आपत्ति नहीं उठाई। सास तिम्मम्मा को सीतम्मा के हर काम में दोष ढूंढकर निंदा करके उसे दुखाने की आदत-सी पड़ गयी थी। जोइस के घर से समाधि का मार्ग घुमावदार था। गांव की परिक्रमा करके मछवारों के मुहल्ले से गुजरना पड़ता था। रास्ता लंबा था। घरों के सामने सूखती मछली, बड़े-बड़े जाल, मछली की दुर्गंध, रास्ते में ही किये गये मल विसर्जन हर जगह सड़ रहे गोबर के ढेर, हर घर से निकल कर रास्ते में बह रहा गंदला पानी और उसकी दलदल, मवेशियों का चारा, कचरा, जहां-तहां बिखरा सड़ा गोमूत्र, इन सबके कारण उस सड़ी दुर्गंधपूर्ण गली में कोई पैर नहीं रख सकता था। तिस पर नहा-धोकर वहां से गुजरना नामुमकिन था। सीतम्मा के स्वभाव और नियम को देखते हुए वह रास्ता और भी दुर्गम था। वह रास्ता दूर भी पड़ता था। वह कोल्लापुर महालक्ष्मी के मंदिर से गुजरता था। उस मंदिर के दालान में जुआखोर, भांगखोर, पियक्कड़ जमकर गप्पें मारते लावणी और अश्लील गीत गाते थे। स्त्रियों को देखते ही हंसते, मजाक उड़ाते, उनके पीछे-पीछे चलते। रंगीली रमणियां उनकी बातों में रस लेतीं, अच्छी स्त्रियां गालियां देतीं! छींटाकशी और छेड़खानी करते, ऐसे ही लोग अधिक संख्या में वहां जमा होते थे। इसी कारण सीतम्मा उस मार्ग से नहीं जाती थी। जोइस के घर के पिछवाड़े से समाधि एक गौफन फेंक की दूरी पर थी। घास पर चलकर जा सकते थे। कचड़े की झंझट नहीं थी। इसलिए रोज सीता एक थाली में हल्दी, कुंकुम, चन्द्रगंध-मंत्राक्षतावाली कटोरी, कुछ फूल, भोग के लिए कोई मिष्ठान्न रखकर समाधि के पास जाती और निर्मलता से पूजा करके लौटती। इसी बीच सीतम्मा के पांव भारी हुए। वह मतली से परेशान थी। कभी-कभी उसे उबकाई आती थी, उसे कै होने लगी। एक तो खा नहीं सकती थी, उस संकट के साथ घरेलू काम-काज की थकावट और मौके बेमौके सास के व्यंग्य बाणों की

मर्मांतक पीड़ा से लड़की अधीर हो गई। एक दिन पार्वतम्मा ने सलाह दी, "क्यों बेटी! जमकर भोजन ही नहीं कर रही हो? काम करने की शक्ति आये कहां से? जिस किसी तरह कुछ खाना ही पड़ता है।" न जाने कहां से तिम्मम्मा ने सास पार्वतम्मा की यह बात सुन ली। उसकी बात पूरी होने से पहले टूट पड़ी–"कौन उससे कहता है कि न खाओ? जान-बूझ कर यह खेल रच रही है। अड़ोस-पड़ोस और मायके वालों को जताना चाहती है कि ससुराल में बेटी को खाना तक नसीब नहीं होता, उसे खूब सताया जा रहा है। हमें बदनाम करने का तरीका है यह। देखिये मैं कितनी बुरी हूं। मेरे उठ जाने से आप लोगों को खुशी होगी। उसकी आंखों में मैं खटकती हूं। देवी माई की आंखें बकरे पर ही गड़ी रहती हैं न? उसके मुरझा जाने की, सूख जाने की रट लगा रखी है आप लोगों ने। ऐसी कौन-सी आफत आ गई है उस पर। थाली भर निगल लेती है हर जून।" वह सीतम्मा को जली-कटी सुना रही थी। पार्वतम्मा ने बीच बचाव किया, "अरे! गर्भिणी को डायन-वायन क्यों कहती हो? मतली आती है न, खा नहीं पाती। यह सच ही है न ?" तिम्मम्मा इसे सह न सकी। वह कह उठी, "क्या शेखी बघारती है? क्या डींग हांकती है? गर्भिणी है, गर्भिणी! तो क्या हुआ? क्या तीर मार लिया है? कैसी प्रशंसा, कैसा गुणगान? हुई है तो हुई है! गोबर पर गोबर डालो तो भी कीड़े होते हैं? वह चाहती है कि गर्भावस्था में हर कोई उसकी टहल करे। ज्यादा भात जानबूझकर ले लेती है और उसे फेंकती है। नहीं तो सबको कैसे पता चले कि यह गर्भवती है! आप उसका पक्ष क्यों लेती हैं? वह जहन्नुम में जाये, मैं क्या परवाह करूं? मुझे क्या पड़ी है?" बात का बतंगड़ बनते देखकर पार्वतम्मा चुप रह गई।

कुछ दिनों बाद एक और घटना घटी। सीतम्मा एक निष्ठावान आदर्श परिवार की थी। उसमें बहुत अच्छी आदतें थीं। सोते समय हर रात वह भगवान की प्रार्थना करके ही सोती थी। एक दिन महादेव गांव में नहीं था, कार्यवश दूसरे गांव गया था। सभी स्त्रियां दालान में सो रही थीं। सीतम्मा के लिए बिस्तर बिछाने को बहुत कम जगह बची थीं। वहीं उसने बिस्तर लगा लिया। वह जगह शहतीर के नीचे थी। घर में रात के काम-काज से फुरसत पाकर लेटने में उसे बड़ी देरी हुई थी। वह आकर लेट गई। देखती क्या है कि उसका बिछौना ठीक शहतीर के नीचे है! "अरे भगवान! यह क्या? शहतीर के नीचे बिस्तर!" कहकर वह प्रार्थना करने लगी, "शहतीर, शहतीर! तुम्हीं मानव, मैं ही काठ। सर्प! तुम्हें भगवान महादेव की कसम। बिच्छू! तुम्हें भैरव की कसम। चींटी अस्सी करोड़ जीव-राशि को छोड़कर इस ओर आये, तो भगवती मुद्रव्वा के पादों की कसम! हर का नाम ले दाईं करवट ली, हरि का नाम लेकर बाईं ; चित्त को अच्युत में लगाया, मन को माधव में। अपने को काशी विश्वेश्वर के चरणों में लगाया। हे भगवान नंजुंडेश्वर! भगवती चामुंडेश्वरी! सज्जनों का संग दो, दुर्जनों को दूर रखो, देवी!" इस प्रकार भगवान् की प्रार्थना करके उसने आंखें बंद कीं। नींद आई तब तक सब सो गये थे, केवल साती अधजगी थी। सीतम्मा का मंत्रोच्चारण उसने सुना और उस समय आराम से सो गई। सोने से पहले भगवान का नामोच्चारण करना पुरानी प्रथा

है। सीतम्मा बचपन से ही इसका पालन करती थी।

भोर सवेरे ही सीता घर के काम-काज से निवृत्त हुई और स्नान का पानी गरम किया। स्नान किया, फिर पानी लाने नदी की तरफ निकल पड़ी। कमर पर एक, सिर पर एक घड़ा रखकर चली। सिर पर के घड़े पर भगवान के अग्रोदक के लिए तांबे का एक पात्र रखा था। घर लौटते समय प्रभाती गुनगुनाती हुई आ रही थी। घर के द्वार पर चौखट से बचने के लिए कुछ झुकी और अंदर कदम रख ही रही थी कि साती ने शिकायत की "मां! भाभी मंत्र बुदबुदाते ही आ रही है। रात को भी ऐसा ही कर रही थी सोते वक्त। सांप की कसम, बिच्छू की कसम, भगवती के पाद की कसम कह रही थी, मेरे बिस्तर के पास बैठकर। मुझ पर टोना किया है इसने; मेरे सिर में दर्द है, आंखें जल रही हैं।" बेटी की बात सुनते ही रोषावेश से तिम्मम्मा उठी और दरवाजा रोककर खड़ी हो गई; उसने बहू से कहा, "तू क्या जप रही है? किस जादू का मंत्र, किस टोने का मंत्र? बको।" सीतम्मा ने उत्तर दिया, "अम्माजी! मैं प्रभाती गुनगुनाती आ रही थी।" तिम्मम्मा ने कहा, "प्रभाती? कौन-सी प्रभाती है वह? कल रात को साती के बिस्तर के पास बैठकर कौन-सा मंत्र पढ़ रही थी, बता!" पानी ढोकर खड़ी सीता ने भयभीत होकर कहा, "मैंने कोई मंत्र नहीं जपा। सोने से पहले भगवान से अच्छे सवेरे की प्रार्थना करने की आदत है। यही मैंने किया।" तिम्मम्मा और जोश में आकर बोली, "तो सांप की क्यों कसम खा रही थी? बिच्छू की कसम माने क्या? मेरी बच्ची के बिस्तर के पास बैठकर ऐसा क्यों करती है? रात से उसकी तबीयत बिगड़ी है। कहती है कि सिर में दर्द है। कंपकंपी आई है। उसकी छाया से तू नफरत करती है न! अब बताओ तुमने क्या किया। बताओ, बताओ न! नहीं तो तू नहीं बचेगी। तुम्हारी हड्डी पसली तोड़ दूंगी मैं। अन्न मेरे घर का, वस्त्र मेरे घर का! फिर भी मेरी बच्ची की जान लोगी तुम? सीधे तरीके से बताओ कि तुमने क्या किया। जिस थाली में खाती हो उसी में छेद करोगी? घरफोड़! बताओ तुमने क्या किया है? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम्हारी आंखें फोड़ी हैं? जीभ काटकर उसमें नमक भरा है? तुम्हारा पेट चीरा है? तुम्हारे मायके की संपत्ति लूटी है? तुम्हारे मायके को आग लगाई है? तुम्हारे बाप का मुंह जलाया है? तुम्हारी मां के सिर पर राख उंड़ेली है? तुम्हारी मां के सिर पर कांटे बोये हैं?" वह चिल्लाती ही जा रही थी। सीता डर गई, इसका अंजाम क्या हो! भय के मारे उसकी टांगें कांपने लगीं। घबराहट से घड़ों को लेकर वह गिर पड़ी। दोनों घड़े गिर पड़े। सीता का सिर चकराने लगा। तुरंत पार्वतम्मा दौड़ी आई, लड़की को उठाया। सीता की पसलियों में मोच आ गई। सिर पर की गगरी और उस पर रखा लोटा गिर पड़े। सीता की छाती में चोट आई, कमर को भी चोट लगी। पार्वतम्मा ने डांटा, "तिम्मू! सेवेरे-सेवेरे यह क्या झंझट है? उससे कौन-सी भूल हो गई? सोते समय, उठते समय कोई भगवान का ध्यान नहीं करते? उससे तुम्हारी बेटी को क्या हानि हुई? गर्भिणी स्त्री को ऐसी गालियां देना ठीक नहीं। हम सब एक नन्हें जीव के लिए तरस रहे हैं। उसने आखिर ऐसा कौन-सा अपराध किया? दुनिया में लोग प्रार्थना नहीं करते? किसी को प्रार्थना करते नहीं

देखा है? उसके पिता की निंदा क्यों? उसकी मां के सिर पर राख उंड़ेलने की क्या जरूरत है? क्या खूब! घर की बात घर में ही रह जाती थी, कानों कान खबर नहीं होती थी। अब लो, चौराहे की मोड़ पर ढिंढोरा पिट रहा है। यह भी कोई बात है? सारा गांव जमा हुआ है घर के सामने! जाने दो सीता, चुप रहो," कहती हुई सीतम्मा को उठाकर अंदर ले चली। तिम्मम्मा खूंखार व्याघ्र के समान रोषाविष्ट होकर द्वार पर बैठे-बैठे गरजने लगी, "इस मनहूस घर में मैं एक शब्द भी निकाल नहीं सकती। जिस किसी को देखो मेरा मुंह बंद करने पर तुला हुआ है। सब आकर घुस गये हैं, मेरे पिताजी का घर परायों का हो गया। मेरा भी एक लड़का होता तो यह बुरी गति नहीं होती। मेरा गर्भ बरबाद हो गया न? आग लगे इस पेट को। मेरे मायके पर कांटे बिछ गये। राही भिखारी सब हमारा अपमान करने लगे हैं। आज उन्हें आने दो घर, मैं निर्णय करके ही रहूंगी। चाहे रहे चाहे जाये! आज फैसला हो जायेगा।" उसी समय गांव से महादेव लौटा। दीक्षित भी केले के पत्ते, साग-भाजी, फूल, तुलसी आदि लेकर घर पहुंचा। बखेड़े की वार्ता सुनकर उसे बहुत दुख हुआ। सबको समझाया। एकत्र भीड़ में से एक-एक करके लोग निकलने लगे। वे कह रहे थे, "छि:! लड़की बेचारी कुलीन है। उसे इस तरह सताना ठीक नहीं है। वे बेचारे आये और यहां बस गये। इसलिए तो जोइस का घर बना हुआ है। वरना कभी का नष्ट हो जाता।"

मायके तक खबर पहुंची कि लड़की सताई जा रही है। वे आये और प्रसव के लिए लड़की को मैसूर ले गये। लड़की की दुखगाथा सुनकर "ब्याही लड़की बिरादरी से दूर, ललाट लिखित को कौन टाल सकता है, स्त्री जाति को कष्ट ही कष्ट है, सुख कहां?" समझकर मायके में अक्षत पर्व, कंगन पर्व आदि पर्व-संस्कार संपन्न किये गये। समय होने पर सीतम्मा ने एक बच्चे को जन्म दिया। सुख प्रसव था, बच्चा बहुत सुंदर था। चार महीनों तक जच्चे की देखभाल करके पांचवें महीने में जच्चा और बच्चे को ससुराल पहुंचाया। सभी खुशी से निहाल हो गये। हमेशा मुंह से आग उगलनेवाली तिम्मम्मा यथावत् मुंह फुलाकर ही रहती थी। पर वह अपने पोते से बहुत प्यार करती थी। उसे गोद में उठाती, खेलाती, पुचकारती, सिर पर सवार कराती, भुजाओं पर झुलाती और तरह-तरह से खेलाती। बच्चे के लिए खूब वस्त्राभूषण बने। सभी उससे खेलते थे। एक रमणी कहती, "लाओ रघु-कुल रामचन्द्र को मुझे दे दो।" और एक 'दादागौरेय्या का खेल' खेलाती। तीसरी बच्चे को घुटनों पर खड़ा करके "हाथी देखो, हाथी। चढ़ा मेंड़ पर हाथी, घास खाता हाथी, पानी पीता हाथी," करके बच्चे को झुलाती। और एक स्त्री "चंदा मामा" दिखाती, तो दूसरी "नाचो मोर, नाचो मोर; बारिश आई छिप जा मोर। मंदिर आंगन खेलो मोर, रंगीन पंख हिलाओ मोर," कहते हुए बच्चे के साथ खेलती। इस प्रकार बच्चे का लालन पालन हो रहा था। किट्टा बच्चे को आभूषण पहनाकर "आओ कृष्णस्वामी" कहकर उसे पूरे नाम से पुकारते हुए बाहर ले जाता और गांव भर घुमाकर वापस ले आता।

इसी बीच साती पुष्पवती हुई और उसका गौना हुआ। वह ससुराल चली गई।

कृष्णस्वामी से तिम्मम्मा का लगाव बढ़ने लगा। दिन-ब-दिन बहू के प्रति द्वेष भी घटता गया। सीतम्मा भी व्यवस्थित रूप से घर का सारा कामकाज करती, क्रम से भक्तिपूर्वक नित्य गौरी पूजा करती और सारा कामकाज बिना किसी लोभ के संपन्न करती। अब वह मां बन गई थी न, इसलिए वेंकम्मा, पार्वतम्मा आदि व्रती वृद्धाएं भी उसके हाथ का पका भोजन खा सकती थीं। अतः दिन की रसोई भी वही बनाती। सुंदर पोते के लालन-पालन, उसकी बाल-लीलाएं, उसके खान-पान, उसके शृंगार आदि में ही तिम्मम्मा का सारा समय लग जाता था। साथ ही पुराने घावों को कुरेद-कुरेदकर उन्हें और गहरा बनानेवाली सुई जैसी साती ससुराल पहुंच गई थी। इससे बहू के प्रति तिम्मम्मा का विद्वेष कुछ नरम पड़ गया।

11

प्रति वर्ष वैशाख पूर्णिमा को जोइस के घर में ब्राह्मण सुमंगली पूजा बड़ी धूमधाम से मनाते थे। उस दिन प्रसाद की प्राप्ति के लिए आसपास के आठ-दस गांवों के ब्राह्मण एकत्र होते थे। तब एक ही दिन में सैकड़ों रुपये खर्च होते थे। रुपये अब के लोगों के लिए बहुत कम लगते होंगे। उस समय खूब वर्षा होती थी, इसलिए फसल खूब आती थी। हर कहीं, जहां की फसल वहीं खप जाती थी। बड़े-बड़े नगरों या बड़ी हाटों में पहुंचाने के लिए राजमार्ग नहीं थे। बैलों या गधों पर सब कुछ लादकर ले जाना पड़ता था। इस तरह माल को पहुंचाना कठिन था, इस वजह से जहां का अनाज वहीं का वहीं पड़ा रहता था। आजकल पंद्रह रुपयों में बिकनेवाला बोरा भर चावल उस ज़माने में दो या ढाई रुपयों में बिकता था। फिर भी खरीदनेवाले ग्राहक नहीं मिलते थे। वस्तु सस्ती थी, रोकड़ महंगी थी। तब के सिक्के का दाम आज के सिक्के का तिगुना था। इसलिए तब सैकड़ों रुपये खर्च करना आज के हजारों रुपयों के खर्च के समान था। ब्राह्मणों तथा सुमंगलियों ने जमकर जलपान किया फिर भोजन। ब्राह्मणों को तांबूल तथा दक्षिणा देकर विदा करने के बाद सुमंगलियों की मंडली जमी। साती भी ससुराल से आई थी। शरबत और पतली छाछ पीने के बाद पान चबाती हुई स्त्रियां बातचीत कर रही थीं। तब पड़ोसिन सुब्बक्का ने कहा, "तिम्मू! क्या ही सुंदर परिवार है तुम्हारा! एक बेटी, एक बेटा; मोती जैसा पोता। लड़का सौतेला है, फिर भी चीज़ के लिए तुम्हारा मुंह देखता है, तुम्हारी बात नहीं टालता। बहू भी कैसी! वर्षों तप करने पर भी न मिले ऐसी बहू। कैसी रूपवती, कैसी समझदार! मैं क्या बखान करूं! सवेरे समाधि की आराधना संपन्न करके लौट रही थी। मैं घर के पिछवाड़े में थी। मैं क्या कहूं? साक्षात् आदिलक्ष्मी जैसी लगी। ऊंचा माथा, सीधी मांग, सघन केश! आंखें, नासिका, दंतपंक्ति, कपोल और फिर सोने का-सा रंग! कद, फबती तनुश्री, गंभीर चाल, हंसमुख, मृदुवचन—मैं किसका वर्णन करूं? सगुणवती है वह। न जाने पूर्वजन्म में कौन-सा सुकृत किया था कि अब ऐसे रूपसौंदर्य की खान बनी है।" इस तरह उसने तारीफ का पुल बांध दिया। तिम्मम्मा के तन-बदन में आग लग गई। वह बोली, "कुछ भी कहो, शहरी शिक्षण प्रशंसा योग्य होता ही है। पर सुब्बक्का, सीता के बाल विचित्र ढंग से घुंघराले हैं। लाख तेल लगाओ, लाख संवारो, सीधे नहीं रहते। घुंघराले होने पर भी सीता के जमीन पर बैठते ही खुलकर नीचे गिरने को उद्यत होते हैं। इतने सारे बालों से क्या लाभ? उसकी वेणी बांधना भी बहुत कठिन है। बाल हों तो मुलायम, सीधे-सीधे और सीमित। वेणी बंध जाये तो पर्याप्त। हमारी साती के बाल ऐसे ही हैं। अब

भाल को लीजिए। साती के भाल जैसा दो अंगुल चौड़ा हो तो ठीक है। उससे भी चौड़ा सपाट हो तो क्या अच्छा लगेगा? मेरी लड़की को लीजिए। भौंहों की जगह वहां एक, यहां एक बाल है। शायद ही दिखाई पड़े। बताइए औरत की भौंह मोटी गहरी क्यों हो? सीता की भौंहें देखिए, नाक पर कितनी मोटी बनी हैं और फिर कान के पास बिलकुल पतली! नीम के पत्ते लगते हैं। उन भौंहों को देखती हूं तो, मुझे नीम के पत्ते खाने पर होती है न वैसे ही कै होती है। सीता की आंखें भी निराली हैं भई। हमेशा अध मूंदी। उनींदी सी लगती हैं। पूरा खोलती है, तो बच्चे घबरा जांय। हाय-हाय कैसे नचाती है उन आंखों को! इधर से उधर ऐसा नचाना कौन जाने, भई? हमारी साती की आंखों जैसी आंखें छोटी-छोटी हों, तो कितनी सुंदर लगती हैं। मैसूरवालों की नाक कुछ अजीब सी लगती है, भौंहों के बीच से पतली, फिर कुछ झुकती है और बाद में मोटी बनती चलती है। अंत में झुक जाती है। ऐसी नाक से कोई सांस भी कैसे ले? आम तौर पर हमारे किट्टा और साती की नाक, जैसे अंत में कुछ मोटी और उठी हुई हो तो सांस लेना आसान होता है। मेरी बहू जितना छोटा मुंह हो जाय तो कोई ईख या लड्डू खाये भी कैसे? हमारी साती के मुंह जैसा चौड़ा हो। जुकाम से नाक बंद हो जाय तब कम से कम मुंह से तो सांस ले सकते हैं? अब होंठ को ही जीजिए। आप जानती हैं कि हमारी साती के होंठ मोटे हैं और सीता के पतले। होंठ मोटे हो तो खाना नीचे नहीं गिरता है। सीता का ऊपरी होंठ कितना चौड़ा और पतला है? साती का ऊपरी होंठ जैसा रहना चाहिए वैसे ही कुछ उठा, खुला-सा है। आप लाख कहिए सीता के दांत अच्छे नहीं। हंसे तो दांत दिखते ही नहीं! दांत होने का अंदाजा भी नहीं हो सकता। सीता गोरी है, सही। पर उस गोरेपन में क्या सौंदर्य रखा है? कोढ़ जैसा लगता है। साती का जब जन्म हुआ था, तब बच्ची कैसी थी, पता है? देखने के लिए दस आंखें चाहिए, बस। पर बाद में चेचक से मुंह ऐसा हो गया। दाग से भरा चेहरा काला पड़ गया। ऐसे थोड़े ही था? खैर! जान तो बच गई न। भाग्य से जी लगी। पर मैसूरवालों का नाज-नखरा, हावभाव, साज-शृंगार कौन जाने? ऐसी चाल कौन चले? इस कला में निपुण होकर हमारी साती को क्या लेना है? अच्छी गृहणी बने। पत्नी का, मां का कर्तव्य निभाये तो पर्याप्त है, दो बच्चों की मां बन जाये तो बस और चाहिए क्या?"

महिला मंडली में तिम्मम्मा का यह निर्णय था। इसे सुनकर वहां की स्त्रियां एक दूसरी का मुंह देखकर मुस्कुराकर चुप रह गईं। ये सुमंगलियां तांबूल स्वीकार करके अपने-अपने घर लौटते वक्त आपस में बातचीत करने लगीं, "इस तिम्मम्मा को क्या कहें? जल-भुन कर बोलती है। उसकी बातें सुन-सुनकर ऊब गई।, फिर भी, सहकर चुप रही। वह साती एक पिशाचिन जैसी है। उस नखरे वाली का दिमाग! रूप के बराबर गुण है।' कुरूपी बहु चेष्टिता' को चरितार्थ करती है। देखते ही कै आने लगे। उसकी तारीफ और बहू की निंदा। क्या खूब! हम अंधे हैं? वह सीतम्मा सचमुच सीता है। केवल नाम से नहीं, चाल-चलन से नहीं, हर दृष्टि से।" आपस में इस तरह बोलती हुई वे स्त्रियां जा रही थीं।

उधर भगवती के मंदिर का अप्पाजी भी प्रबल बन चला था। इसकी टोली भी बढ़ती जा रही थी। वहां एकत्र होनेवाले बदमाशों की हरकतें बर्दाश्त के बाहर थीं। भगवती को मिलने वाली मनौती की दक्षिणा से उसकी थैली मोटी होती जा रही थी। चार पैसे इकट्ठे हो जायं तो छोटे लोगों का सिर फिरना मामूली बात है। उसके कानों में बाली, हाथ में तोड़ा और बाहु में बाजूबंध, उंगली में अंगूठी, फिर पांवों में पाजेब! किनारेवाली धोती आई, बाद में मलमल के आसन पर बैठते वक्त सिर पर लपेटने के लिए भी मलमल, पहनने के लिए जरी किनारेवाला पीतांबर, ओढ़ने को लाल वस्त्र। इस तरह अलंकार और दिखावे के साधनों की निरंतर वृद्धि होती गई। वह बाहर निकलता तो युवा लठैत उसके आगे पीछे लग जाते। ये दुष्ट मंदिर के ओसारे में जमकर जुआ खेलते थे, रंगीले गीत गाते थे। अश्लील गीत भी गाये जाते थे। युवतियों को देखने पर उनमें रसिकता बढ़ जाती थी। कमसिनों को देखते ही ठठाकर हंसना, फब्तियां कसना, शुरू हो जाता। औरतें उस रास्ते से गुजरते डरने लगीं। नदी से पानी लानेवाले लोगों को उसी रास्ते से जाना पड़ता था। बिखरी मशाल की भांति ये गुंडे अनियंत्रित थे। वे क्या करें या क्या न करें कहना मुश्किल था।

सीतम्मा हर दिन जोइस के घर से समाधि के पास पूजा के लिए जाया करती थी। समाधि नदी के समीप थी। पहले वहां से नदी तक जाने के लिए कोई अड़चन नहीं थी। लेकिन आजकल नदी तट पर खेती करनेवालों ने वहां घेरा डाल दिया था। समाधि इस खेत के बीच में पड़ती थी। पूजा करने के लिए समाधि तक आने की रोक-टोक नहीं थी। भगवती के मंदिर के आंगन के सामने करीब सौ-ड़ेढ सौ गज की दूरी पर समाधि थी। मंदिर के आंगन में रहने वालों को वृंदावन की समाधि की पूजा के लिए जानेवाली सीतम्मा दिखाई पड़ती थी। रोज-रोज उसके जाने का वक्त भी सब लोग जानते थे। उन दिनों गुमराह युवकों का उपद्रव जोरों पर था। बुद्धि विकार के लिए श्रीगणेश करनेवाली दृष्टि ही है। समाधि के पास पहुंचकर सीतम्मा पूजा करती, फिर उसके लौटते वक्त मंदिर में इकट्ठे सब की दृष्टि उस पर पड़ती थी। एक दिन अप्पाजी ने मंदिर के ओसारे से ही गौर से देखा। वह तृप्त नहीं हुआ, दृष्टि उधर ही जम गई। कुछ समय के बाद उसने पूछा, "यह दीक्षित जी की बहू है न?" उपस्थित मंडली ने कहा, "हां।" तब अप्पाजी ने कहा, "बहुत सुंदरी है! अनुपम है! मैंने गौर से नहीं देखा था। ऐसी रूपराशि को मैंने कहीं नहीं देखा है।" उपस्थित व्यक्तियों में से एक ने कहा, "उसके केश कितने सुंदर हैं?" दूसरे ने कहा, "केवल केश अच्छे हैं न कहो। घुंघराली काली लटें गोरे मुखरे पर कमान जैसे सोहती हैं।" तीसरे ने कहा, "वे आंखें, वे भौंहें और वह चितवन अन्यत्र दुर्लभ है।" और एक ने कहा, "वाह उसकी मुस्कान पर सब कुछ न्योछावर है।" और कोई बोला, "हाथी दांत की पुतली लगती है वह, इतनी सुंदर है।" अन्य किसी व्यक्ति ने कहा, "अरे! शरीर की बात करता है! उसमें और क्या बुरा है, बताओ?" और एक कह उठा, "चुप भी रहो। तुम जानते ही क्या हो? मैसूर में महल का हाथी चलता है न, ऐसी ही चाल है उसकी।" दूसरे ने कहा, "क्या बकते हो भई? उसकी

आंखें इधर से उधर मटकीं तो समझो किसी का दिल मचल उठा।" तीसरा बोल पड़ा, "इसने बहुत देखा है, जैसे! चुप भी रहो! एक अंग की बात करता है। और क्या बुरा है, बताओ। उसके वक्षस्थल की किस चीज से तुलना करोगे?" किसी ने कहा, "चलती है तो लचक-लचक कर! भगवान ने और दस आंखें दी होतीं तो भी पूरी नहीं पड़ती।" और कोई बोल पड़ा, "पिछले शुक्रवार को जोइस जती के घर के किट्टप्पा ने मेरे हाथ कुछ गुलाब के फूल भेजे थे। घर में मैंने फूल लेने को कहा। वह आई और हाथ पसारा। वाह! क्या ही हाथ था! उसकी हथेली और गुलाब के रंग में कोई फरक न था। उसके हाथ-पांव के नाखून लाल कनेर के रंगवाले आइने जैसे चमकते हैं।" एक ने पूछा, "लगता है उसका मुंह कील मुहासों से भरा है।" दूसरे ने प्रतिरोध किया, "अबे क्या बकता है! देखा नहीं उसका चेहरा कितना मुलायम है? एक दाग, एक धब्बा दिखा दो तो देखें! बोलते जाते हो! देखा है तो बोल वरना मरे कुत्ते की तरह चुप पड़ा रह, समझे।" और एक ने पूछा, "वह कुछ मोटी-सी लगती है, तिम्मा। लगती है न?" तिम्मा ने उत्तर दिया, "अरे जा जा। तूने कहां देखा है औरतों को? नुक्कड़ पर रहने वाली मोटी को देखकर बक रहा है। कैसी लचक-लचक कर चलती है वह, लता जैसी! हमने भी बहुत सी लड़कियों को देखा है पर तुम क्या जानो? मैसूर को छोड़कर और कहीं नहीं मिले ऐसी लतांगी! मशाल लेकर ढूंढो तो भी न मिले।" एक बोला, "तुमने उसे देखा नहीं। तुम क्या जानो? वह जो गाती है, मैं क्या बताऊं? सुननेवाले होश खो बैठें, ऐसा गाती है वह।" दूसरे ने कहा, "अरे! गाना रहने दो। तुम गाने के बारे में क्या जानो? मैसूर में इसे मात करनेवाली हैं गाने में! परसों बहरे नंजा की शादी में नहीं आई थी? क्या वह उससे भी बेहतर गाती है? वह बात छोड़ो, बताओ इसमें किस चीज की कमी है?" तीसरे ने आह भरी, "ऐसी मुझे मिली होती तो देखते मैं कैसे उसकी हिफाजत करता।" इनके साथ बैठे एक बूढ़े ने चुटकी ली, "अरे! क्या बकते हो? हाथ में धन नहीं, बदन पर भूषण नहीं, रास्ते चल रही रांड़ को देखकर मुंह में पानी लाये तो क्या कहें?" उनमें से और एक वृद्ध ने नसीहत दी, "क्या बक रहे हो तुम लोग! यह भी कोई बात है? तुम्हारी मां बहन नहीं हैं?"

तब अप्पाजी ने कहा, "चित्र में अंकित करो तो लगता है कि गुम हो जायेगी। रूप के साथ नखरा भी है तो क्या कहना? यही बात पुरुष का दिल तोड़ने के लिए काफी है।" पास ही बैठा एक व्यक्ति बोल उठा, "कहते हैं, यह महापतिव्रता है। घर भी संभालती है, भगवान का नाम भी जपती है। निरापद रहती है।" तब अप्पाजी की बगल में बैठे अध्यापक नारप्पय्या ने कहा, "हर घर में कोई न कोई बखेड़ा होता ही है। पर हमें क्या लेना देना?" यह सुनकर अप्पाजी ने ताड़ लिया कि दाल में कुछ काला है। मन ही मन उगती आशा के अंकुर को सींचते हुए नकली हंसी हंसते हुए कहा, "मास्टरजी, क्यों बेसुरा राग अलाप रहे हैं? क्या कोई बात है? वर्षों तक उनके घर में रहे हैं न। उनसे क्या छिप सकता है?" उत्तर में नारप्पय्या ने कहा, "मैं सब कुछ जानता हूं। इस छोरी का पति हमारे यहां ही पढ़कर तैयार हुआ है न। मैंने ही उसे पढ़ाया। पर वह भी क्या करे? ऐसी लड़की पल्ले पड़ी। दिन रात

सास-बहू के बीच झगड़ा; मिटने का नाम नहीं लेता। सुन-सुन कर मैं भी थक गया हूं। सास देवी है तो सब कुछ सहकर चुप रहती है।" तब अप्पाजी ने पूछा, "सास-बहू के बीच यह अनबन क्यों है"?

उपाध्याय : मैं कैसे जानूं कि क्यों लड़ती हैं? तिम्मम्मा कैसी अच्छी स्त्री है, यह हम सब जानते ही हैं। वह अवगुण सह नहीं सकती। बस, यही झगड़े की जड़ है।"

अप्पाजी : बहू में क्या दुर्गुण हो सकता है?

उपाद्रि : कहते हैं न 'करनेवाले बचे, बोलनेवाले फंसे' हमें क्या पड़ी है कहने को?

अप्पाजी : कोई न कोई विशेष बात तो होगी ही?

उपाद्रि : न सुना, न देखा। कहूं भी तो कैसे? यदि कुछ न होता तो सास हाथ धोकर बहू के पीछे क्यों पड़ती?

अप्पाजी : देखिए उपाद्रि जी, मैंने भी बहुत देखा है। जहां रूप है वहां कुटिलता अवश्य होती है।

उपाद्रि : परसों मैंने "ताराशशांक" में पढ़ा कि नहीं? चंद्र सुंदर था इसीलिए उसमें दोष उत्पन्न हुआ। वह कलंक बनकर रह गया।

अप्पाजी : देखिए उपाद्रि जी, मेरे मन में यह संशय रह जाता है। सौंदर्य के साथ कलंक क्यों लगा रहता है? भगवान का चेहरा कितना मनमोहक होता है? तब हम भगवान में भी दोषारोपण करते हैं क्या? ऐसे दोष को आरोपित करने के बाद हम उन्हें पूजें भी कैसे?

उपाद्रि : भगवान का रूप दोषरहित होता है, पर मनुष्य में सौंदर्य के साथ दोष भी मिला रहता है।

अप्पाजी : तब जहां रूप नहीं वहां बुराई भी नहीं होती, यही न?

सभापतैय्या : जहां कहीं दोष है वहां रूप का रहना संभव है क्या? वैसे ही जहां रूप हो वहां दुर्गुणों का रहना अनिवार्य है? कुछ भी कहना मुश्किल है।

अप्पाजी : रूप लोगों के मन को आकृष्ट करता है।

सभापतैय्या : केवल रूप मन में विकार उत्पन्न नहीं करता। चित्र में स्त्री का श्रेष्ठ रूप दीजिए, तो मन विकृत नहीं होगा।

अप्पाजी : ऐसा कहा नहीं जाता। निर्जीव गुड्डी और चित्र के साथ मनुष्य की तुलना ठीक नहीं है। जीवंत सौंदर्य मन को अवश्य आकृष्ट करता है।

सभापतैय्या : मेरी बात तुमने नहीं समझी, अप्पाजी। निर्जीव गुड्डियों में सौंदर्य को देखकर हम मुग्ध होते हैं। ऐसे ही फूल को देखें या अच्छी तरह से बने मकान को देखकर हम रीझ उठते हैं। मनुष्य के सौंदर्य को जब देखते हैं

तब भी ऐसे ही आनंद का अनुभव होता है। स्त्री को देखकर पुरुष के मन में और पुरुष को देखकर स्त्री के मन में भी आविर्भूत होने वाला आनंद ऐसा ही है। हमारे चित्त में विकार उत्पन्न करके विषय-वासना जगानेवाला सौंदर्य दूसरा है।

उपाद्रि : यह क्या? एक नवीन वस्तु का विवरण दे रहे हैं। जरा बताइए तो सही यह क्या है?

सभापतैय्या : लोगों के मन को आकृष्ट करनेवाला केवल रूप नहीं, सौंदर्य नहीं; इसे मैंने पहले ही बता दिया है। वह मूर्तियों में भी पाया जाता है। ज्यादातर बाहरी हाव-भाव पत्थर-दिल को भी पिघला देते हैं। पुरुषों को देखते ही सिर झुकाना पर कनखियों से उसकी ओर देखते रहना, बालों को संवारना, पल्लू को सरकने देना और बाद में उसे खींच-खींच कर ऊपर करना; बातचीत करते वक्त अकारण हंसना, पुरुष को देखते ही जुगुप्सा से भौंहें सिकोड़कर दूसरी ओर मुंह फेर लेना; इसी बीच कुछ हंसना, कुछ ही क्षणों बाद पीछे मुड़कर प्रियकर को देख आंखें बचाते हुए निकल जाना; और किसी के बहाने बुलाना, प्रियतम के हृदय को पिघलानेवाली रीति से वार्तालाप करना; बार-बार साड़ी के सौंदर्य और आभूषणों की चमक को जानबूझकर निहारना; अतीव लज्जा का प्रदर्शन करना; पुनः पुनः आइना देखते हुए शरीर को लचकाते हुए पुरुष जब देखे तब अनदेखी करते हुए नखरे करना; पुरुष जब नहीं देखता है, तब निर्लज्जता से उसी की ओर टकटकी लगाना; बच्चों को हद से ज्यादा पुचकारना, जोर-जोर से गाना; हंस-हंस कर बड़ी विनय से बोलना, परपुरुषों के सामने मंडराना आदि चेष्टाएं पुरुष रूपी मृग को फंसाने के फांस जैसी होती हैं। पुरुष को देखकर चंचल नहीं होनेवाली आंखें लाख सुंदर रहें तो भी कोई हानि नहीं; नहीं बोलनेवाला मुंह अतीव सुंदर रहे तब भी कोई बात नहीं; अंगांग चाहे जितना सुंदर हो, उनमें चंचलता न हो, तो कोई आपत्ति नहीं। अच्छी तरह सोचकर देखिये। कोई और बात हो, तो बताइए। केवल सौंदर्य कदापि कार्यकारी नहीं है।

उपाद्रि : मैं इतना सब कुछ नहीं जानता हूं, क्षमा करें। मैं इन्हें ढूंढकर भटक नहीं सकता।

अप्पाजी : लगता है सभापतैय्या जी पुस्तक में अंकित वर्णन को पढ़कर सुना रहे हैं। उपाद्रि ने जो बताया वे लोक प्रचलित चेष्टाएं हैं। कितने वर्षों से जोइस जी के घर में हैं, आंखों से देखा है। क्या वे नहीं जानते?

अप्पाजी के मन में सभापतैय्या के वचनों के प्रति तिरस्कार और उपाद्रि की मधु-सनी

विषैली बातों में रुचि पैदा गई। इस बातचीत के दौरान ही उसका चित्त विकल हुआ, अंधकार छा गया। बुद्धि और कुछ नहीं सोच सकी। अप्पाजी चुपचाप बैठा रहा। सब लोग वहां से निकल पड़े। जब सब चले गये तो अप्पाजी ने उपाद्रि को वापस बुलाया। इधर-उधर झांककर और किसी को न पाकर बोला, ''उपाद्रि जी! दीक्षित जी की बहू के बारे में लोग लाख तारीफ करें, तो भी अंदरूनी स्थिति कुछ और है, है न? मैंने तो लोगों की प्रशंसा पर विश्वास कर लिया था''। उपाद्रि ने कहा, ''मैं उनके घर में ही था और नजदीक से देखा है। पति-पत्नी के बीच साम्य है ही नहीं। महादेव ने मेरे पास अध्ययन किया और लायक बना। पर अब मैं उसे फूटी आंख नहीं सुहाता। उस औरत को संभालना उस बुद्धू के बस की बात नहीं। मैं तो बुढ़ा गया हूं, फिर भी सच कहता हूं। उस औरत के लिए ऐसा वैसा नहीं, तुम जैसा छैल-छबीला चाहिए। तब जाकर कहीं वह झुकेगी। एक न एक दिन वह ... जाने दो, भाई मुझे क्या पड़ी है? पहले से सदाशिव दीक्षित मुझसे चिढ़ता है। लड़कों को पीटोगे नहीं तो वे कभी पढ़ेंगे? इसी महादेव को मैंने एक चांटा मारा तो बहुत शोरगुल मच गया था। मरते-मरते प्राण बचे। तुम वह सब नहीं जानते। कहने लगूं तो तीन दिन लगेंगे। अंत में उस दीक्षित ने कह डाला कि मैं पढ़ाने लायक नहीं हूं। तुम्हीं बताओ कि इस गांव में ऐसा कौन है जिसने मेरी शागिर्दी नहीं की हो। उंगलियों पर गिनकर देखो। उसकी बात आज भी मेरे पेट में खौल रही है। ये सब के सब जोइस के घर में घुस आये। वरना इन लोगों की क्या औकात? दरबारी रहे होंगे, आज भी हैं। पर दरबार में इनकी क्या गिनती? जमीन जायदाद सब उस बुद्धू किट्टू की है, तिम्मम्मा के पिता ने कमाई थी। तिम्मम्मा ने महादेव की इस पत्नी को उंगली के नीचे दबाकर रखा है।" अप्पाजी ने उपाद्रि को घर भेजा। और आप भी घर की राह ली। वह उपाध्याय की बातों की याद करते हुए चल रहा था। एक शब्द "तुम-सा छैल छबीला" से ही वह मान बैठा कि सीता के लिए वही सही जोड़ी है। यह स्पष्ट न था कि उपाद्रि ने यों ही यह बात उड़ाई थी या जानबूझकर अप्पाजी के उन्माद को बढ़ावा दे रहा था। पर उसे अपनी प्रशंसा मानने के लिए अप्पाजी को गुंजाइश थी। मन्मथ के मायाजाल से विवेक-चक्षु पर परदा-सा छा गया। "इस कामना की पूर्ति कब होगी? तिम्मम्मा घर की स्वामिनी है। उसने बहू को काबू में रखा है। इसलिए यही मार्ग है।" इस तरह सोचकर वह एक निर्णय पर पहुंच गया। उसकी कामना क्षण-क्षण बढ़ती जा रही थी।

भगवती के मंदिर में संपन्न होनेवाली दिन और रात की महामंगल आरती से लेकर भगवती के अलंकार, भोग-प्रसाद तक में दिन-ब-दिन विशिष्टता आने लगी। भगवती का अलंकार करने मैसूर से लोग आया करते थे। महिषासुर-मर्दिनी, महाकाली, सीता, पार्वती, सावित्री, गायत्री, सीतापार्वती, सती, राजराजेश्वरी, त्रिपुरसुंदरी, गंगा आदि अलंकारों से भगवती को सजाया गया। पर्व के दिनों में कभी-कभी शोभायात्राएं भी होती थीं। भगवती की वैभवोपेत सेवा का प्रचार करके दर्शक भक्तों को आकृष्ट करने के विशेष प्रयत्न होने लगे। दूर-दूर के ग्रामों से झांकियां देखने लोग आते थे। खासकर शतकंठ रावण संहार का अलंकार

और मोहिनी अलंकार को एक बार देखने पर फिर से बार-बार देखने को मन करता था। मंगलआरती के समय बड़े अधिकारी और प्रसिद्धि प्राप्त पुरुषों को विशेष निमंत्रण देकर बुलाया जाता था। शुक्रवार के दिन मंदिर में केवल स्त्रियों को प्रवेश देने का निर्णय हुआ। जोइस जी के परिवार की महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता था। घर से विशेष आदर के साथ उन्हें मंदिर ले जाने की और फिर उन्हें मंदिर से घर पहुंचाने की विशेष व्यवस्था थी। उन्हें दूसरे भक्तों की अपेक्षा ज्यादा फूल, ज्यादा भोग पहुंचाने का क्रम शुरू हुआ। वरमहालक्ष्मी व्रत के संदर्भ में और दशहरे में सुमंगली पूजा के बहाने दीक्षित के परिवार को कीमती साड़ियां और वस्त्र पहुंचाये जाने लगे। गांव-गांव में, घर-घर में अप्पाजी की प्रशंसा होने लगी।

सीतम्मा चूके बिना हर दिन तुलसी-पूजा करने निकलती थी। उसी तरह रोज नदी जाकर पीने का पानी भी लाती थी। अन्यथा वह घर से बाहर कदम नहीं रखती थी। तुलसी के चबूतरे के पास जहां यह परिक्रमा नमस्कार किया करती थी, वहां उन दिनों, एरंड के पत्तों में फूल-गुच्छ बांधे, चंदन की टिकियों से भरे डिब्बे, जवादी, कस्तूरी, केसर, कुंकुम आदि सुगंधियों से भरी डिबियां और मोगरा, चंपक, जुही आदि फूल मालाएं जिनके बीच हरी पत्तियां भी गुंथी हुई हैं, चांदी के रुपये, सोने के सिक्के आदि की वर्षा होने लगी। सीतम्मा इन चीजों को जहर समझती थी। उसका चित्त कभी विचलित नहीं हुआ। इधर मंदिर के आवारों का उपद्रव दिन-ब-दिन बढ़ता गया। इसके कानों तक पहुंचाने के उद्देश्य से ही मारे गये तानों का भाव वह समझती थी पर उसका मन दृढ़ था। कार्रवाई और एक कदम आगे बढ़ी। अरुन्दम्मा की समाधि के पास अश्वत्थ वृक्ष का एक चबूतरा था। रोज उस वृक्ष की परिक्रमा करने की अप्पाजी ने योजना बनाई। परिक्रमा करते समय उसने अपनी शान-शौकत का प्रदर्शन शुरू कर दिया। सीतम्मा की तुलसी पूजा का समय देखकर यह भी बड़े वैभव से अकेले ही वृक्ष-पूजा में लगे रहने का नाटक खेलने लगा। सीतम्मा के तुलसी वृंदावन पहुंचने तक वह उधर ही मंडराता रहता। उस समय सिद्ध का ढोंग रचनेवाला अप्पाजी सीता की ओर देख-देखकर दांत निपोरता था। सीता ने इस ओर ध्यान न दिया। "पूजा के लिए यह फूल लीजिए," "नैवेद्य के लिए यह फल स्वीकारिये" आदि तरह-तरह के बहानों से बातें छेड़कर अप्पाजी सीता के समीप आने लगा। सीता उसकी ओर बिना देखे ही पूजा जल्दी समाप्त करके मुंह सिकोड़कर वहां से चल पड़ती। इस तरह इस नीच का उपद्रव बढ़ता ही गया। इसके बारे में घर में दूसरों से बताना कठिन था, नहीं बताना भी कष्टकर था। इसे चुपचाप सहना नरक समान था। सीतम्मा का मन दृढ़ था। संध्या के समय भगवती का प्रसाद कहकर मन को मोहनेवाली मैसूर की फूलमाला की पोटली जोइस के घर पहुंचने लगी। तिम्मम्मा हर दिन मंदिर जाने लगी। उसके पहुंचने में देरी हो जाय तो एक के बाद एक संदेशवाहक आता और उसको लिवा ले जाता। मंदिर में उसका विशेष सम्मान होता ही था साथ ही सिखरन, तरह-तरह के फलों की डालियां, बादाम, मिश्री, किसमिस, खजूर भरी

थालियां, शुक्रवार के दिन जरीदार वस्त्र आदि से लदे नौकर उसके साथ चलकर घर पहुंचाते थे। कंगाल को रस भोज की प्राप्ति जैसी स्थिति हुई तिम्मम्मा की। वह पुलकित होकर एक रात मंगलआरती के बाद विदा होते समय बोली, "अप्पाजी! तुम पुण्यात्मा हो ; भगवती की अपार कृपा है तुम पर। बहुत से पुजारी देखे, इस तरह की पूजा-अर्चना कभी न हुई। यह पिछले जन्म का पूजा-फल ही है। इस जन्म में भी पूजा कर रहे हो, अगले जन्म में भी अच्छी पदवी पाओगे।" प्रशंसा सुनकर अप्पाजी ने उत्तर दिया, "माता जी! आपके आशीर्वाद के ही फलस्वरूप मैं इस योग्य बन सका। पर माता जी, गांव के निवासियों के अलावा दूर-दूर के गांववाले भी आकर भगवती के दर्शन करके प्रसाद स्वीकार करते हैं, पर छोटे शास्त्री की पत्नी यहां कभी नहीं पधारी। भगवती के दर्शन के लिए उन्हें भी एक दिन भेजने की कृपा हो। मैसूर में उन्होंने बहुत कुछ देखा होगा। उसके सामने यह अकिंचन है।" खड़े रहकर उसने हाथ जोड़े। तिम्मम्मा बोली, "अच्छा! उसे भी भेजूंगी, तुम जो आमंत्रण दे रहे हो। पर वह इस जमाने की है और मेरी बात की क्या कद्र, अप्पाजी। कोई बात नहीं, उसे अवश्य भेजूंगी" कहकर वह चली गई। तिम्मम्मा की बहू को "इस जमाने की" कहते हुए भावावेश में आकर अप्पाजी इस निर्णय पर पहुंचा कि मेरी इच्छा पूरी होने का दिन अब दूर नहीं है। घर पहुंचकर तिम्मम्मा ने कहा, "अरी सीता! तुम कभी भगवती के मंदिर जाने का नाम ही नहीं लेती, भला क्यों? अप्पाजी को बहुत बुरा लगता है। दूसरों की तरह तुम भी जा सकती हो। भगवती का कितना मोहक अलंकार करते हैं, देखने में चार आंखें नहीं पूरतीं। आंखों के पाप मिट जाते हैं। जाकर भगवती के दर्शन करना और साथ प्रसाद लेती आना। इससे तुम्हारी क्या हानि है? जब सब जाते हैं, तो नहीं जाने में तुम्हारी क्या श्रेष्ठता है? बड़ी नखरेबाज निकली यह। चल,चल। तुम्हें लिवा ले जाने को लोग बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं। दो-दो मशाल आये हैं। अप्पाजी जैसा आदमी चिराग लेकर ढूंढने पर भी न मिलें?" सीतम्मा ने दो टूक जवाब दे दिया, "आप लाख जबर्दस्ती कीजिए, पर मैं उस मंदिर में नहीं जाऊंगी।" यह सुनकर अप्पाजी को बहुत दुख हुआ। उसने इस योजना के पीछे काफी धन लगाया था। अब उस पर पानी फिर गया।

कुछ समय के बाद एक दिन द्वादशी के निमित्त रसोई का काम जल्दी ही हो गया। सूर्योदय तक पुरुषों ने भोजन कर लिया। उस नीच के अश्वत्थ वृक्ष के पास आने से पूर्व ही तुलसी पूजा संपन्न करके घर लौटकर भोजन करने की इच्छा से सीतम्मा तुलसी की अर्चना कर रही थी। अप्पाजी ने इसे ताड़ लिया। तेजी से अश्वत्थ वृक्ष के पास पहुंचकर वृक्ष पर मुट्ठी भर फूल फेंके, फिर कपूर आरती के लिए कपूर जलाने के बहाने वहां पहुंच गया। चारों ओर आदमकद करील के वृक्षों का घेरा था। केवल मंदिर के ओसारे की ओर खुला था, पर उस समय मंदिर को निर्जन रखने की व्यवस्था हुई थी। लोगों की चहलपहल अभी शुरू नहीं हुई थी, घना कोहरा छा गया था। वह कुहरा कौन-सा था, यह कहना मुश्किल था! वह कामांध व्यक्ति की आंखों का कुहरा था! नीच व्यक्ति की संपत्ति के जल जाने से पहले

उठनेवाले धुएं का, या महापतिव्रता की क्रोधाग्नि से उठनेवाले धुएं का, अथवा दुष्कर्म का काला कुहासा! या, देवता व ब्राह्मणों की सेवा में किये गये सत्कार्यों के जलकर बनी राख सज्जनों की आहों से ऊपर उठकर कुहरे-सी लग रही थी! आगे की कहानी कैसे सुनाऊं? शब्दों से कहूं तो जीभ तुतलाती है, लिखूं तो कलम खिसक जाती है। उस समय भगवान की आरती के निमित्त कपूर जलाने के बहाने आया वह सिद्ध अभिनव रावण या कलियुग के कालनेमी जैसा लग रहा था। तुलसी को दीर्घ-दंडप्रणाम करने के बाद उठती सीतम्मा के नजदीक आकर उसकी साड़ी का पल्लू खींचते हुए, उसका मुंह देखते हुए वह बोला, "तुम मेरे भाग्य की लक्ष्मी हो। तुम्हारी दया का पात्र बनने के लिए मैंने एक जमाने से प्रयास किया है। ऐसा रूप और वह गंवार उजड्ड! तुम्हें मैं रानी जैसी रखूंगा, "कहते हुए सीता को बाहों में भरने के लिए वह आगे बढ़ा। सीतम्मा ने करधनी पहन रखी थी, वर्ना साड़ी उतर गई होती। रोषावेश में आकर वह बोली, "अरे नीच, दुष्ट, चांडाल! सावधान! मेरे शरीर को हाथ लगाने की हिम्मत मत करो। तुम्हें मारकर लाश को कुत्तों के हवाले करने की शक्ति है मुझ में। दूर हटो। अब तुम्हारे लिए अच्छे दिन खत्म हो गये, समझे? तुम्हारे लिए मैं यमराज हूं।" जोर से चिल्लाती हुई उसने घड़े का पानी उस पर उंड़ेल दिया। थाली को जमीन पर रखकर उसने नजदीक पड़े एक नारियल गात्र का पत्थर उठाया और उसे सारी ताकत लगाकर उसकी छाती पर दे मारा। पत्थर उस नीच के सीने से लगा। "हाय-हाय! मैं मरा! मैं मरा," चिल्लाते हुए वह जमीन पर गिर पड़ा। फिर भी वह चिल्लाता गया, "अरी! रहने भी दे। तू मुझे मारेगी! एक न एक दिन तुझे पाकर ही रहूंगा, जिंदा या मुर्दा। तू लाश बन जाय तब भी मैं तेरा संग करूंगा। अब तुझे वश में करना कोई कठिन कार्य नहीं है। पर मैं तुझे अपनी ताकत दिखाकर तुझ पर काबू पाऊंगा। देखती रहना।" सीतम्मा थाली-कटोरी लेकर चली। उस सिद्धा के होश में आने से पूर्व ही पड़ोसिन सुब्बक्का के घर का पिछला दरवाजा आवाज करते हुए खुला। सवेरे-सवेरे भोजन करके सुब्बक्का ने पत्तल फेंकने के लिए दरवाजा खोला था। आवाज सुनते ही सिद्धा घबराकर उठा और फरार हो गया। वह नरकभाजन नीच सुब्बक्का की नजर से बच निकला था। सीतम्मा का वीरावेश अभी उतरा नहीं था। वह दस लोगों की शक्ति का अनुभव कर रही थी। बाल बिखरे पड़े थे। मुंह तमतमा रहा था। आंखें लाल थीं। सदा धीरे-धीरे चलनेवाली वह ललना भूमि को कंपाती हुई डग भर रही थी। वह घर की ओर चली। उसे देखकर सुब्बक्का को आश्चर्य हुआ कि सीता आज ऐसी क्यों है। उसने पूछा, "भोजन कर लिया?" सीतम्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया! हाथ पैर थर्रा रहे थे, होंठ कांप रहे थे। उसके मुंह से बोली निकली ही नहीं। घर पहुंचकर सीता रसोई घर में बैठ गई। "खा लो, सीता। न जाने क्यों आज तुम्हारा मुंह फूला हुआ है," कहकर दादी मां के फुसलाने पर भी सीता उससे नहीं बोली। निर्जल उपवास किया। बाद में वह कोई काम नहीं कर सकी। आज की घटना का जिक्र किससे करे? दादी मां से कहे, तो वह बेचारी कर भी क्या सकती है। अकारण ही भूनकर खानेवाली सास से कहना मशाल से सर खुजलाने के समान है। ससुर से

किस मुंह से कहे, क्या इज्जत रह जायेगी! पति से कहे तो न जाने बात कहां तक पहुंच जायेगी। किसी से यह बात कैसे कहे? क्या कहे? एक नीच परपुरुष ने जब मेरे वस्त्रों को छीनने की कोशिश की, तो मेरा पातिव्रत्य भंग हुआ कि नहीं? मुझे जीवित रहने का अब क्या हक है? अब आत्महत्या करना ही ठीक है न ? पर आत्महत्या पाप है। दुष्ट दुश्शासन ने द्रौपदी का चीर भंग किया था न? उसका पातिव्रत्य भंग तो नहीं हुआ? आत्महत्या ही करना चाहती हूं, तो इस सुंदर बालक को छोड़कर कैसे जाऊं? प्राण देने पर भी लोग कह सकते हैं, "कुछ पाप किया था। रहस्य के खुल जाने पर जान दे दी।" तब भी बेइज्जती ही होगी न? यहां तक सोचना भी पाप है? रावण सीता को जबरदस्ती उठाकर रथ पर चढ़ाकर ले गया था। फिर भी उसके सतीत्व को धक्का नहीं पहुंचा। तुलसी के चबूतरे पर उस नीच ने जो मानभंग किया, उसे न जाने किस-किस ने देखा है? उन लोगों को मैं मुंह कैसे दिखाऊं? इस तरह सीतम्मा तरह-तरह से सोच रही थी। चौका बर्तन करते-करते वह अस्वस्थ हो गई। अतीव क्रोध या भय या आनंद आदि से शरीर की सहजवृत्ति पर उल्टा असर पड़ता है। कुछ भी हो सीतम्मा का क्रोध शाम तक ठंडा नहीं हुआ। दूसरे और तीसरे दिन भी ऐसा ही बना रहा। घरवालों ने समझा कि सीतम्मा कुछ आतंकित है। वह बराबर तुलसी पूजा कर रही थी। पर उस नीच के फिर आकर मानभंग करने का या प्राण लेने का भय बराबर बना रहा। इसलिए वह तुलसी की आराधना के लिए निकलते समय पार्वतम्मा को साथ लेकर गई। पर वहां पहुंचते ही लगा कि द्वादशी के दिन आया रौद्राकर फिर से प्रत्यक्ष हो गया है। इस प्रकार त्रयोदशी और चतुर्दशी बीती। अमावस्या की पूजा भी संपन्न हुई। बाद में जो घटना घटी उसका मैं क्या वर्णन करूं?

12

अमावस्या के दिन सवेरे ही नित्य गौरी पूजा और तुलसी पूजा संपन्न हुई। सीतम्मा ने रसोई बनाई। पुरुष बैठकर खा रहे थे, सीतम्मा ने ही परोसा था। कुएं से पानी लाने के लिए वह घर के पिछवाड़े गई। बैंकम्मा वहां नहा रही थी। उसने पूछा, "सीता! तीन दिनों से देख रही हूं तुम्हारा मुंह सूजा हुआ है। ठीक तरह से किसी से बोलती नहीं। तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है? और कोई बात है? तुम्हें कौन सा कष्ट है बेटी? कैसा हंसमुख था तुम्हारा चेहरा! कैसे मुरझा गया! तुम्हें क्या तकलीफ है, बता न बेटी?" सीतम्मा घड़े में पानी खींचकर लाई थी। अभी पिछवाडे का दरवाजा पार किया था धड़ाम से वह गिर पड़ी। घड़ा भी गिरा। अंदर की चौखट पर उसके मुंह से "ओह" का चीत्कार निकल पड़ा। पुरुष जो खा रहे थे दौड़े आये और देखा। सीता औंधे मुंह गिर पड़ी थी। पति और ससुर के आने पर भी वह उठी नहीं। उनके सामने पहले कभी ऐसी स्थिति में वह नहीं आई थी। दीक्षित चिल्ला उठे, ''अरे कोई है? सीतम्मा गिर पड़ी है। जल्दी करो।" घर की औरतें दौड़ी आई। लेकिन तिम्मम्मा हर दिन जैसे ही ताने मारने लगी। "अरे! गिरने के लिए उसे हुआ क्या? मोटी तगड़ी है। उठ री, यह स्वांग बंद कर। सबकी हमदर्दी चाहिए इसे। आंखें खोलकर सब कुछ देखती पड़ी है। उठ री, उठ।" वह मनमाना बके जा रही थी। बैंकम्मा ने सीता को उठाने की बेकार कोशिश की और उसने कहा, "मैं अकेली इसे उठा नहीं सकती। पुरुषों में से कोई इधर आओ, उठाओ इसे।" महादेव ने यत्न तो किया। पर वह पत्नी को न तो उठा सका न ही बिठा सका। वह होश खो बैठी थी। उसे बिछौने पर सुलाया गया। कोलाहल मच गया। राहु का प्रकोप समझकर लाल पानी उतारा गया। सिर पर पानी छिड़काया गया। कानों में फूंका, पंखा झला। पित्त का प्रकोप मानकर इमली के रस में गुड़ घोलकर पिलाया। सदाशिव दीक्षित और उसकी मां पार्वतम्मा ने, जितने उपचार जानते थे, वह सब किया। अड़ोस-पड़ोस के लोग, जितनी चिकित्सा जानते थे, वह भी की गई। मंत्र फूंके, इंद्राक्षि-शिवकवच का पाठ कर विभूति लगाई। विष्णु सहस्रनाम जपकर मंत्राक्षत डाला। ललिता सहस्रनामोच्चारण करके कुंकुम लगाया। पर यह सब करने पर भी वह होश में नहीं आई। जबरदस्ती दूध पिलाया तो होठों से बह गया। मुंह खोल कर देखने पर पता चला कि दांत जम गये हैं। तिम्मम्मा ने सुझाया, "उससे इतनी हमदर्दी क्यों? सब सेवा करते हैं कि नहीं, इसकी परीक्षा ले रही है। इसलिए ऐसी पड़ी है। कलछी को गरम करके लाइए और दागिये। देखिए तब उठती है कि नहीं।" कुश दूर्वा और कंगन के टुकड़ों से सीतम्मा को दागा, पर सीतम्मा के मुंह से आह तक नहीं

निकली। तब भी सास का व्यंग्य सुनने को मिल रहा था, "अरे! अग्निस्तंभ और जलस्तंभ जाननेवाली है यह। उसे यह किस गिनती में?" बालक कृष्णस्वामी तड़प रहा था। मां से मिले बिना, मां से बोले बिना एक युग हो चुका था। दूध पीकर बहुत देर हो गई थी। वह "मां", 'सो', 'आ' आदि तीन-चार शब्द जानता था। वह मां से स्तनपान करने के लिए मचलने लगा। बच्चा रोने लगा तो लाख कोशिश करने पर भी शांत नहीं हुआ। वह मां के पास गया। मां के शरीर पर लोटने, मुख पर से पल्लू हटाने और उसे खींचने लगा। सब ने लाख यत्न किया पर सीतम्मा होश में नहीं आई। उस रात को कोई सोया नहीं। पड़ोसिन सुब्बक्का परेशान थी। वह बोली, "एकादशी तक ठीक थी। द्वादशी के दिन समाधि की पूजा कर जब लौट रही थी, तो घर के पिछवाड़े में मैंने उसे देखा था। उसका मुंह सूजा हुआ था। उससे मैंने पूछा भी। होंठ हिलाकर कुछ बड़बड़ाई, जो मैं समझ नहीं सकी। तभी मैंने ताड़ लिया कि यह कुछ अस्वस्थ है। अब क्या कहें? यह इस तरह पड़ी है। कौन इसे देखे!" गांव के सारे लोग देखकर गये। दो दिन बीते, तीन दिन बीते। पंद्रह दिन बीते, महीना बीता। फिर भी वह सुधरी नहीं। आंखें अधमुंदी, कराहती पड़ी रही। बच्चे का रुदन दिल दहलानेवाला था। बहू के प्रति विशेष लगाव न रहने पर भी पोते के प्रति ममता से प्रेरित हो तिम्मम्मा के मन में बहू के प्रति सहानुभूति जगी। उसके लिए चिंतित रहने लगी। लोगों की बताई गई चिकित्सायें भी करने लगी। कोई लाभ नहीं हुआ। यह सब जलती मशाल से सिर खुजलाने के बराबर था। "हजार दवाई करने से क्या लाभ? भगवती के मंदिर में अप्पाजी से भविष्य जान लें तो कुछ पता लगे"—यह कहकर तिम्मम्मा पूजा की थाली सजाकर मंदिर गई। वहां थाली सिद्धा के सामने रखकर भविष्य वाणी की प्रार्थना की, "अप्पाजी! हमारी सीतम्मा बेहोश पड़ी है। यह कोई प्रारब्ध है कि पिशाच? या कोई भूत है? यह दैवी प्रकोप है या मानवी? वह भली-चंगी होगी कि नहीं? बताना।" यह ऐसा ही था कि हनुमान कालनेमी से संजीव पर्वत का रास्ता पूछे! उस दुष्ट की दसों उंगलियां घी में! वह पाल्थी मारकर बैठ गया। दायें हाथ में चांदी मढ़ी बेंत धरे, उसे जमीन पर टोकते हुए बायें हाथ में पकड़े धातु के छल्लों को हिलाते हुए पहले देवी देवताओं को, फिर मारिमसणियों का आवाहन कर सस्वर भविष्य वाणी कहने लगा, "उसके बचने की बात आप जानना चाहते हैं? यह रोग नहीं है, कुछ खतरा नहीं है ; न ही यह देवताओं का प्रकोप है, न मनुष्य का। लोगों के मन के मर्म को जानने का यह स्वप्रयास है। इसे कपटवेश समझना।" तिम्मम्मा ने इसे सत्य मान लिया। घर लौटकर बहू पर फिर से टूट पड़ी। गालियां सुनाने लगी, तब पड़ोसिन सुब्बक्का ने उसे समझाया, ऐसा क्यों कहती हो? बेचारी मुंह पर बैठी मक्खी भी उड़ा नहीं सकती! एक-दो दिन की बात और है, यहां महीनों से अन्नजल के बिना पड़ी है। परिस्थिति को समझे बिना वह नीच अप्पाजी बकता है। उसकी चाल-चलन को आग लगे।

तिम्मम्मा : तब अप्पाजी झूठ कहकर हमें दगा क्यों दे रहा है?

सुब्बक्का : उसकी बातों में मत आओ। मैसूर ले जाकर यंत्रमंत्र कराओ, दवा

दिलाओ। अरे! बांबी में सांप है, तो तुम लाठी बांबी पर चलाओगी?

सीतम्मा को मैसूर ले जाने का निर्णय हुआ। गाड़ी तैयार हो गई। गाड़ी पर लिटाने के लिए सीतम्मा को उठाया तो वह जोर से चीख उठी। सबके दबोच कर पकड़ने पर भी छुड़ाकर वह जहां सोई पड़ी थी फिर वहीं जाकर गिर पड़ी। यह समझकर कि यह भूग्रहचेष्टा है तीन बार मंत्र फूंका गया। और क्या-क्या नहीं किया गया पर कुछ सुधार नहीं दिखा। यह सब देखकर महादेव को बहुत दुख हुआ। दूसरों से कहते संकोच होता और चुप रहना भी कठिन था। वह दिन में खा नहीं सकता था और रात को सोना हराम हो गया। पत्नी की चिंता उसे घुन की भांति खाये जा रही थी। वह हार गया। बच्चे के रुदन ने सबको परेशान कर रखा था। इसकी चर्चा करने के लिए सदाशिव दीक्षित मैसूर चला गया। बेटी की हालत देखने के लिए उसके माता-पिता और नाना सांबशास्त्री भी दीक्षित के साथ ही चल पड़े।

13

इधर अप्पाजी सोच में पड़ गया था। उपाद्रि के माध्यम से किये गये उसके प्रयत्न पर पानी फिर गया। तिम्मम्मा को डालियां और भेंट चढ़ाने पर भी उसे सफलता हाथ न लगी थी। इसलिए इन प्रयत्नों के अलावा अन्य नयी योजनाएं भी बनानी पड़ीं, तो निर्णय किया गया कि अब किट्टा जोइस को ही आधार बनाना पड़ेगा। अप्पाजी, उपाद्रि आदि मंडली के सदस्य कार्यसिद्धि के लिए अब किट्टा जोइस का अनुसरण करने लगे।

किट्टा जोइस इस कुतंत्र से अनभिज्ञ था। वह हमेशा मंदिर जाया करता और उधर ही समय बिताता। भक्तों से दानदक्षिणा में मिले पैसों को बटोरता और मंडली के व्यंग्य विनोद में भाग लेता। उसका शिकार बनता, लोगों को हंसाते तथा आप भी हंसते समय बिताता। एक दिन तीसरे पहर सब मंदिर में एकत्र हुए। थोड़ा हंसी-मजाक हो जाने के बाद किट्टा जोइस को छेड़कर उसकी बातचीत सुनकर और उस पर फब्तियां कसकर खुशी मना रहे थे।

उपाद्रि : जोइस, पंचांग लाये हो? जरा आज की दिन-शुद्धि बताओगे?

किट्टा : सुनिए, जरूर सुनाऊंगा। समझते होंगे कि मैं कुछ नहीं जानता, क्यों उपाद्रि जी? पंचांग पढ़ूंगा, सुनिये : प्रमाद संवत्सर मार्गशीर्ष बहुल पंचमी शनिवार 10 घड़ी 20 विघड़ी चित्रा नक्षत्र 4-5, अतिगंड नामयोग 1-2, शकुनी नामकरण 57-54, रात भर अंधकार छाया रहेगा, कुछ लोगों को सुविधाजनक, कइयों को असुविधाकारक दिनांक 35.

उपाद्रि : दिन शुद्धि का फल बताओ।

किट्टा : जरूर बताऊंगा। क्यों नहीं? "प्रमाद" संवत्सर है, इसलिए प्रमाद होंगे ही। मार्गशीर्ष बहुल पंचमी है न-मार्गशीर्ष माने रास्ते में गुजरनेवालों के सिर-बहुला अर्थात् विशिष्ट रूप से, पंचमी अर्थात् पंचत्व को- मतलब मृत्यु को- प्राप्त करेगा। इसका अर्थ है कि रास्ते में चलनेवालों का सिर चोरों से फोड़ा जायेगा। साथ ही पंचमी शनिवार अर्थात पंचम शनि-शनि की पीड़ा होगी। चित्रा नक्षत्र है न, लोगों का मनमाना व्यवहार रहेगा। अतिगंड योग का फल है - अतिविपत्तियों का आ घेरना। यही शकुनिकरण का फल है। इस दिन में पैदा होनेवाले सभी शकुनि की भांति चतुर होंगे। — क्यों मैंने जो कहा उसे समझ लिया न?

अप्पाजी : पंचांग का फल बताओ, किट्टप्पा।

किट्टा : तो तुम्हें विश्वास नहीं कि मैं पंचांग-फल बता सकूंगा। तुम समझते हो कि यह तुम्हारे भविष्य-कथन जैसा है? लो सुनो। "तिथे च श्रीमाप्नोति" पंचांग श्रवण करके माता-पिता का श्राद्ध करते हैं ; इससे भोजन व दक्षिणा मिलते हैं। इससे "श्री" अर्थात् संपत्ति की प्राप्ति होती है। "वारादायुष्यवर्धनम्" का मतलब है कि दिन का पता लगे तो जान सकते हैं कि भोजन किसके घर है। इस तरह घर-घर में पुष्कल भोजन करने से आयु बढ़ती है। "नक्षत्राद्धरते पापम्" - नक्षत्र जानने से बच्चों को पुचकारते हैं। "योगादरोग निवारणम्" - हम अपनी जन्मपत्री देखकर काम करें तो चुंगी के दारोगा से बच सकते हैं। "करणातु कार्यसिद्धिंच" — करण माने घर में पूजा आदि अनुष्ठान संपन्न होते हैं। यही फल है, उपाद्रि मुझे अनभिज्ञ समझकर परीक्षा ले रहे थे?

उपाद्रि : घर में तुम कहां सोते हो, भाई?

किट्टा : मैं बीच चबूतरे पर अड्डा जमा देता हूं। झक मारिये तो भी मैं वहां से नहीं हटता। हाथी खेले, घोड़े नाचे, आसमान जमीन पर आ गिरे तो भी सवेरा होने पर ही उठने का नाम लूं, समझे? अच्छा, चुटकी भर नासा दें।

सभापतय्या : अरे किट्टा! वेंकटय्या धर्मशाला के अप्पलैय्यंगार आये हैं, उन्हें देखा?

किट्टा : अबे अप्पलैय्यंगार-माने पापडैयंगार-बडिया अयंगार, तू कब आ धमका बे ?

अप्पलैय्यंगार : कल रात को आया, किट्टा।

किट्टा : कहां ठहरे हो? रात को रसोई बनाई थी कि नहीं? तिलक की पेटी लाये हो? या करवट बदलकर खाली पेट सोये?

सभापति : यह क्या पूछ रहे हो तुम? रसोई बनाये तो पेट भरेगा, तिलक की पेटी मात्र लाने से क्या खाक पेट भरेगा?

किट्टा : पेट क्यों नहीं भरेगा? अयंगारों की जान है तिलक की पेटी!

अप्पाजी : तिलक की पेटी में तिलक के सामान होते हैं, उनसे पेट भरे भी कैसे?

किट्टा : तुम क्या जानो वह रहस्य? उस पेटी में लोटा, कंबल, पाथेय माने रास्ते में खाने हेतु अन्न की पोटली, जूते, पूजा की मूर्ति—ये पांचों पेटी में होते हैं। यह एक पेटी लेकर चलिए, दुनिया की सैर कीजिए। ये पांचों उसमें होते हैं। इसलिए ये अयॄयंगार कहलाते हैं।

अप्पल : छिः क्या कहते हो। जूते, भगवान की मूर्ति - दोनों को तिलक की पेटी में एक साथ? कोई रखता है? पागल जैसे मत बको।

किट्टा : तब यह पेटी इतनी मोटी क्यों होती है? और उसे ताड़पत्रों को बुनकर क्यों बनाया जाता है? मैसूर से गेज्जल हट्टी घाटी के मार्ग से जाओ तो श्रीरंग पहुंचने में आप लोगों को दस दिन लगते हैं न? रास्ते में आप लोग रसोई कभी बनाते हैं? शुद्ध जल को देखते ही हाथ-मुंह धोकर, तिलक चढ़ाकर, चोटी झाड़ते हुए अंगरखे की आड़ में उपले जलाते हैं श्री वैष्णव यात्री। फिर पानी गरम करके इमलीभात की इक्कीस पोटलियों में से एक को खोलकर खाते हैं, गरम पानी पीकर आगे बढ़ते हैं। क्यों ठीक है कि नहीं?

अप्पल : अबे कोई एक अवसरवादी ऐसा करे, तो हर कोई थोड़े ही ऐसा करेगा?

किट्टा : तुम लोगों ने ऐसे श्वचों का हुक्का पानी बंद कर दिया है, क्या? नहीं न? एक घर का अनाचार सारी बिरादरी को नहीं बिगाड़ता?

अप्पल : बासी खाद्यान्न को कोई ऐसे ले जाता है? तुम कहते हो, ये मूरख सुनते हैं।

किट्टा : आप क्या जानें इन रहस्यों को? रहस्य चार हैं— रामानुज रहस्य, चिदंबर रहस्य, रति रहस्य और योग रहस्य। श्रीवैष्णवों में स्पर्श दोष नहीं है। "यह भी नहीं, वह भी नहीं; पैसे में तीन नमकीन खरीदें, टुकड़े करके मुंह में डालें, अंगवस्त्र पर हाथ साफ किया," यह कह देने से स्पर्श दोष मिट जाता है।

अप्पल : अरे क्या बकते हो कुत्ते जैसे? तुमसे किसने कहा कि कोई भी पकी पकाई चीज हम लोग खा लेते हैं, और हाथ धोकर शुद्धि नहीं करते? केवल भगवान के सान्निध्य में भोग प्रसाद के लिए पकी चीज को अशुचित्व का दोष नहीं है। ऐसी शास्त्रोक्ति है। उसमें दोष नहीं है। दोष की कल्पना करना भी पाप है। उसके लिए प्रायश्चित भी बताया गया है।

किट्टा : हां, हां, क्यों नहीं। तुम सच ही कहते हो। इसके समर्थन में एक बीज मंत्र भी है : "देवों का देव रंगनाथ है, भोग-प्रसादों में सर्वश्रेष्ठ पोंगल माने खिचड़ी है और तीर्थ ही जल है। यानी उस पर हाथ साफ करना तीर्थजल में धोने के बराबर है।" कहते हैं कि इस मंत्र के पाठ से अशुचित्व का दोष निवारण हो जाता है। मलिनता मिट जाती है।

अप्पल : भाई, इस पागल की बात मत मानिये। पागल कुत्ते की भांति बकबक कर रहा है।

अप्पाजी : कैसी मलिनता?

किट्टा : ये लोग सिर्फ युगादि और दिवाली के अवसर पर साल में दो बार नहाते

हैं, बस। यदि ये नित्य स्नान करते, तो इनकी चोटी इतनी मोटी कैसे रहती? एक बार स्नान कर लें, तो मानते हैं कि फिर नहाने तक सब कुछ स्वच्छ ही रहता है। जैसे बाद में कुछ भी मलिन नहीं होता।

अप्पल : हां हमारे शास्त्रों में ऐसा ही बताया गया है न - "उपस्पर्शो न स्पर्शः" अर्थात उपस्पर्श से स्पर्श का दोष नहीं।

किट्टा : स्नान करके गाड़ी में बिछे बिछौने पर बैठें तो भी इन्हें स्पर्श दोष से छूट है। शुचिता भंग नहीं होगी।

अप्पल : हां ठीक ही तो है। हम गाड़ी पर बैठते हैं बिछौने पर नहीं! मुख्य आधार गाड़ी है। बिछौना उस पर बिछा है, उसका आधार भी गाड़ी ही है। इसका मतलब है हमारा संपर्क तो गाड़ी से है, बिछौने के जरिए। बिछौने को हमने सीधे छुआ ही नहीं।

किट्टा : जमीन पर बिछे बिस्तर को यदि हम छुएं तो स्पर्श दोष होगा?

अप्पल : वह अशुचित्व माना जायेगा।

किट्टा : यह कहां का न्याय है? ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि जमीन पर बिस्तर बिछा के हम बैठें तो हमारे लिए जमीन ही प्रधान आधार है और उससे संबंधित होने के कारण बिछौना हमारे लिए उपस्पर्श ही है। आप यह बात मानते हैं?

अप्पल : भू-संबंध के कारण उसे उपस्पर्श मानना ठीक नहीं। उसे अशुचित्व ही माना जायेगा।

किट्टा : शुचिर्भूत होकर गलीचे को छूते हो, फिर भी कहते हो स्पर्श दोष नहीं। इसकी क्या सफाई दोगे?

अप्पल : ये सब बातें दशाचार और कुलाचार के अनुकूल चलती हैं।

उपाद्रि : तुम्हारी सीतम्मा कैसी है, किट्टा जोइस? सुनते हैं बेचारी एक ही जगह बेहोश पड़ी है?

किट्टा : पहले निश्चल ही पड़ी थी, लेकिन अब मंत्र फुंकवाया है! महादेव के रास्ते के पासवाले कमरे में उसे लिटाया गया है। जीजाजी मैसूर गये हैं, मांत्रिकों को बुला लाने। तब तक महादेव के कमरे ही में सारी व्यवस्था की है।

अप्पल : तो वैष्णवों का स्पर्श संबंधी शास्त्र तुम्हें पसंद नहीं किट्टा?

किट्टा : उसकी बात पूछो मत। वह एक सनक है, बस! शुचिता का बहुत ख्याल है उन्हें इसमें 'अति' की हद तक जाते हैं। खासकर आचार्य की उपस्थिति अनिवार्य है। फिर सब कुछ उनके आदेशानुसार चलता है।

सभापति : कैसे आचार्य हैं, किट्टा?

किट्टा : आचार्य की पोशाक में कोई भी आ जाये, उन्हें बड़े आचार्य, पूड़ी रामाचार्य, बघार भीमाचार्य, आठमनोंवाले आचार, गोशालाचार्य आदि। इनके शिष्य अप्य, टोप्य, टोण्य, टोश्य आदि। ओखली जितनी बड़ी इनकी छाप और मूसल जैसा काला तिलक। सबको मैं जानता हूं। आजकल ये लोग छूत-अछूत का ज्यादा ख्याल रखते हैं। उठो शुद्धि, बैठो शुद्धि, हाथ की शुद्धि, पैर की शुद्धि, स्नान की, खानपान की, यहां तक कि पत्नी की शुद्धि, पति की शुद्धि, यों चलता है इनकी शुचिता का चक्र।

सभापति : राव जी के घर आचार्य जब गये थे, उसका वर्णन करो, किट्टा।

किट्टा : राव जी के घर में शादी थी, तो आचार्य जी चल पड़े। साथ पत्नी भी चल निकली। आचार्य का घोड़ा तैयार किया गया। ठोण्या नामक शिष्य ने पूछा, "घोड़े पर कौन-कौन सवार होंगे?" आचार्य ने उत्तर दिया, "घोड़े पर कौन बैठेंगे? यही न। बच्चा, बच्चे की मां। मुस्टंडा यंकण्णा, कच्चा केला कृष्णाचार, रोटी रामाचार, छः मन सत्तू, तीन मन नमकीन, बस। और कौन है?" आचार्य चल पड़े। रास्ते में कावेरी नदी मिली। बिना नहाये, बिना मुद्रा चढ़ाये किसी के घर जा सकते हैं, भला? आचार्य नहाये, नाक से लेकर केश तक तिलक धारण हुआ, द्वादश लंबे तिलक चढ़ाये गये। भगवान की पूजा बाकी है, गृहस्थ पूजा के बाद तीर्थ स्वीकार करने की प्रतीक्षा में हैं। दिया जलाने हैं। दिये बाहर आये, पर तेल कहां है? आचार्य पूजा की पेटी में ढूंढ़ने लगे, पर तेल न मिला। तब आचार्य की पत्नी बोली, "अरे यह क्या! कैसी बात है? एक पैसे का, कटोरी भर तेल लाकर बच्चे का, शेषी, नरहरी, पातू, आदि का अभ्यंगन कराके सिर सिंगू, मंगू को लगाकर, फिर कटोरी में बचे बूंद-बूंद तक बेटे माधव के सिर में मलकर, आंगन के दीप, ओसारे के दीप और नंदा दीप में डालकर, बघार की कलौछी में इस्तेमाल करके, मिट्टी के भांडे में बर्तन भर तेल रखा था। ये सिंगू, मंगू ने मिलकर उसे गायब कर दिया है क्या?" तब आचार्य ने कहा, "साक्षात सूर्य भगवान ही जब दीप का काम कर रहे हैं, तो दूसरे दीप की क्या जरूरत? इसके लिए शास्त्रोक्ति है।" वे भगवान की पेटी खोलने लगे। उसी समय गृहस्थों के घर से बुलावा आया। "शुक्लांबरधरं विष्णुं" जपते हुए पूजा शुरू करने वाले ही थे तो आमंत्रण मिला। तत्काल पूजा का अंतिम मंत्र "स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताः" पढ़कर पेटी को रस्सी से कसकर बांध लिया। तब आचार्य के बच्चे ने मांगा, "मां! खाने के लिए कुछ दो।" मां ने समझाया, "फनस खाने के लिए हम राजकुमार नहीं हैं, केले खाने

के लिए न अमीर हैं, न कटोरी भर घी खाने के लिए हम दीवान पूर्णय्या के घरवाले हैं।"

सभापति : किट्टा! किसी ने तुम्हें पागल कहा न?

किट्टा : हां मैं पागल जरूर हूं और तुम भी बुद्धू हो।

उपाद्रि : तो अब पेटी-संदूक सब महादेव के कमरे में हैं, है न?

किट्टा : पहुंच गये, तो क्या डर? सीता वहीं सोती है न?

अप्पल : अरे तुम तो सबका मजाक उड़ाते रहते हो। चंदन के अडालकीरवाले तुम लोग क्या दोष-मुक्त हो?

किट्टा : हां, हां, क्यों नहीं? हर बात में हमारा व्यवहार शास्त्र सम्मत होता है। धुले सूखे कपड़े को हम बांस से उतार लेते हैं। हमारे लिए वह स्वच्छ है ; श्राद्ध के लिए भी यह मान्य है। यात्रा के समय हम भात का पाथेय ले चलते हैं। पका होने पर भी वह पाथेय है, इसलिए वह रास्ते में खाद्य समझा जायेगा। नमक मिला हुआ हमारे यहां अशुद्ध माना जाता है। मूंग और चने की दाल नमक मिलाने पर भी शुद्ध मानी जाती है, लेकिन पकाने पर वही अशुद्ध हो जाती है। गेहूं की सोजी पकने पर भी अशुद्ध नहीं मानी जाती। असल में हमारे यहां कोई निर्धारित नियम नहीं। कभी कोई चीज शुद्ध, कभी वही अशुद्ध। ओढ़ो तो शुद्ध पहनो तो अशुद्ध। भोजन से पहले ही उतारी पोशाक शुद्ध है। श्राद्ध की मिठाई पितृ शेष है। हमें तो दैत्यशेष कहते हैं। हमारी बिरादरी में सब देवी देवताओं के पूजक हैं, किंतु हमें विभूतिधारी कहकर पहचानते हैं। ब्याटरायस्वामी के माननेवाले तीन लंबे तिलक लगाते हैं। हुच्चरायस्वामी को माननेवाले मुद्रा धारण करते हैं। चामुंडी के भक्त कुंकुम धारण करते हैं और बाबय्या के अनुयायी, तो इजारबंद पहनते है। ईसा के भक्त हों तो सर्वेश्वर के मंदिर गिरजाघर जाते हैं। तंबाकू के शौकीन चिलम की शरण में जाते हैं।

सभापति : किट्टा, शेर के लिए अपना जंगल क्या, पराया जंगल क्या?

किट्टा : बिलकुल। तुम्हें कहने की क्या जरूरत है? सब के सब बके जा रहे हैं; किसी ने एक चुटकी नास दी है? मैं मुंह खोलूं तो खिल्ली उड़ाके हंसना भर मालूम है। मगर यहां एक चुटकी नसवार नसीब नहीं होती।

सुननेवालों को तो यह हंसी-मजाक ही लगता था। पर उपाद्रि अलग दिशा में दौड़ता था। बीच-बीच में वह विचित्र प्रश्न पूछा करता था। जब सब लोग मंदिर से अपने घर गये तब,

उपाद्रि : अब जान गये कि कमरा रास्ते पर खुलता है। जैसा हमने पहले तै किया

था, वैसे ही दोनों कामों के लिए यही सूक्त समय है।

अप्पाजी : आपकी दया से ही यह संभव है।

उपाद्रि : मैं अंदर की बात जानता हूं न! मैं कार्य-सिद्धि के उपाय बताऊंगा।

अप्पाजी : "आपके आदेशानुसार ही सब कुछ होगा।" इस तरह निश्चित करके वे घर लौटे।

14

इधर सदाशिव दीक्षित मैसूर पहुंचा। बहू की हालात का कारण जानने के लिए यहां-वहां पूछताछ करने लगा। बड़े-बड़े ज्योतिषियों से पूछने पर भी कोई समाधान नहीं मिला। कोई कहता प्राणभीति है, कोई कहता नहीं है। कई तो कुछ स्पष्ट बताने में असमर्थ थे। एकाध तो अभिचार और शाबर प्रयोग की बात भी करते थे। पशुपति सांबशास्त्री भी पूछताछ में लगा रहा। अंत में एक मंत्रमूर्ति तलचेरी शेषयूया का पता चला। वे वैद्यकशास्त्र, मंत्रशास्त्र, जादू-टोना और उसकी रोकथाम आदि में प्रवीण बताये जाते थे। वे कोल्लापुर महालक्ष्मी के उपासक थे। बताया गया कि उनके पास जाने से काम बन जायेगा।

शेषयूया लक्ष्मीपुत्र थे, किसी से किसी चीज की अपेक्षा नहीं करते थे। राज दरबार के वेतनभोगी थे। वे माथे पर कुंकुम लगाते थे। पूरा सवेरा आह्निक में बीत जाता था। बाद में बाहरी दालान में बैठकर दवा देते, मंत्र फूंकते। वे किसी के घर नहीं जाते थे। किसी से पैसे नही लेते थे। सांध्य पूजा बड़े जोर-शोर से संपन्न होती थी। उस समय कोई भेंट या चढ़ावे के रूप में जो पेश करता मात्र उसे स्वीकार करते। हर शुक्रवार की पूजा में, वरमहालक्ष्मीव्रत, पर्वपूजा, नवरात्रि पूजा और खासकर कालीरात्रि-पूजा में काफ़ी धन व्यय करते थे। तत्संबंधी सुवासिनी पूजा और ब्रह्मभोज में भी पर्याप्त खर्च होता था। ये स्वभाव से रसिक थे, मिलनसार थे। तीसरे पहर में शतरंज, गंजीफा आदि खेला करते थे। कभी-कभी महाभारत, रामायण, भागवत वाचन, कन्नड़ काव्य पाठ आदि के कार्यक्रम बनाते थे। साथ ही उन्हें अच्छा व्यवहार ज्ञान था। अपनी समस्याओं को लेकर और अर्जी आदि लिखवाने के लिए भी उनके पास लोग आते थे। वे देशाभिमानी थे और भाषाभिमानी भी। उन्हें एक झूठा विश्वास था कि कंपनी सरकार व्यापार के लिए आई है, राज्य स्थापित करने की उसे क्या आवश्यकता है, अतः वह एक-न-एक दिन देश छोड़कर निकल जायेगी। उन्हें यह विश्वास था कि वे खुद मंत्र फूंककर तुर्कों को भगा देंगे। इस तरह के निरर्थक शब्द भी उनके मुंह से निकलते थे। कोई भी बोले तो कहते थे कि देशी शब्दों का प्रयोग करें। 'अर्जी' की जगह 'मनवी', स्याही के बदले 'मसि', 'छापाकागज' के लिए 'मुद्राकागज' 'मुलकी बाबू' की जगह 'लेखाधिकारी', 'पेनागरि' के लिए 'लेखनी'। उन्हें 'हुद्देदार' शब्द पसंद न था, उसकी जगह 'अधिकारी' देखना चाहते थे। 'तेरीज' सुनकर गुस्से में आ जाते, 'हिसा' सुनकर खुश हो जाते। 'तरी खुष्की' नहीं 'खेत-बगीचा', 'पानी की कृषि और सूखी कृषि' से और प्रसन्न होते। 'पैसे की वसूली' की जगह 'पैसे एकत्रित करना' उन्हें अच्छा लगता था। कभी-कभी

उन्हें लेने के देने पड़ते थे। एक बार किसी ने महल में राजसभा की बात कही तो शेषय्या ने आपत्ति उठाई, कहा कि 'दर्बार' कहना चाहिए। किंतु उस आदमी ने बताया कि 'दर्बार' देशी शब्द नहीं है। उसके लिए शेषय्या का उत्तर था, 'दरबार मुगल शब्द है, सुनने में अच्छा लगता है।'

पशुपति सांबशास्त्री और सदाशिव दीक्षित इस व्यक्ति के घर जाकर उससे मिले। एकांत में उसे सीतम्मा की स्थिति का ब्योरा दिया। शेषय्या ने कुछ गिनती की, मंत्रशास्त्र की किताबों को छाना और फिर कहा, "देखिए, आज शुक्रवार है न? मुझे अवकाश कम है। मैं कुछ निर्णय सुना नहीं सकता। कल शनिवार है तो बातचीत नहीं होगी। परसों इतवार को आइये, मैं सब कुछ बताऊंगा।" उसी प्रकार ये इतवार को उनसे मिले, तो शेषय्या ने कहा, "मैं अपने हिसाबों का फल मात्र बता सकता हूं, आप अपने अनुभव से परखिएगा। आपके स्थान के नजदीक एक शूद्र रहता है। उस दुष्ट का कुप्रयत्न सफल न होने के कारण उस नीच ने एक देवता का आवाहन करके जादू करके एक मूर्ति को, रोगिनी जहां हर दिन चलती फिरती है, उस रास्ते में गाड़ा है। इसे एक ब्राह्मण का सहयोग प्राप्त है। यह ब्राह्मण पहले से आप लोगों के प्रति मित्रता दिखाकर शत्रु ही बना रहा है। आप लोग व्यथित हैं कि रोगिनी बचेगी कि नहीं। अब तक मैंने ऐसा विचित्र मामला नहीं देखा था। ग्रंथ कुछ कहते हैं। मुझे तो प्राणभय दिख रहा है, इसका निवारण असंभव-सा लगता है। दूसरी प्रक्रिया के अनुसार देखें तो अंत में प्राणभीति से बचने के लक्षण दिखते हैं। मेरा दिमाग काम नहीं करता, निर्णयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकता। बहुरूपिया कृष्णय्या आनेवाला है। उससे मैं इस मामले की चर्चा करूंगा। हम दोनों सोच-विचार करेंगे, फिर भगवती पर भरोसा करके कुछ निश्चय करेंगे। इस विजातीय मामले पर विचार करके निर्णय पर पहुंचने की मुझे बड़ी आसक्ति है। मैं कातर हूं। आप लोग सोमवार दोपहर को आइये।"

बहुरूपिया कृष्णय्या ऐसे विषयों का अच्छा ज्ञाता था। कहा जाता था कि उसका जन्म आंध्र प्रदेश में हुआ था, पर वह बचपन से केरल में रहता था। वहां उसने बहुत-से विचारों का अध्ययन किया था। वह जादू-टोना, शुक्रनाड़ी पर आधारित ज्योतिष, चरक के अनुसार वैद्यक, गणेश प्रश्न, अभिचार, अभिचार का पुनरावर्तन, अग्निस्तंभ; जलस्तंभ आदि दृष्टिबंध और मायाजाल में उस्ताद था। साथ-साथ वह बहुरूपिया भी था। वह कभी-कभी मैसूर में राजमहल भी जाता और प्रभु से भी मिलता। किसी भी समय, किसी भी वेश में उसे प्रवेश प्राप्त था। उसे न रोकने की राजाज्ञा हुई थी।

एक दिन कृष्णय्या ने सारे शरीर में विभूति लगाई, बाल बिखेर दिये, दायें हाथ में चिमटा और बायें में कपाल धरे अपने एक बेटे को भी शरीरभर विभूति लगा के, कौपीन धारण कराके उसे अपना शिष्य बनाकर आप स्वयं नंगे बदन निकल पड़ा। चूंकि वह बहुरूपिया था तो वह जब चाहे, चाहे जिस वेश में चाहे महल में प्रवेश कर सकता था। उसे नहीं रोकने की राजाज्ञा थी। यह एक विशिष्ट वेश था। कृष्णय्या इतना अकड़ा हुआ था कि

उसका पुरुष-चिह्न ही गायब था। जल विसर्जन का एक छेद मात्र दिखाई पड़ता था। इस वेष में वह अंबा विलास में पहुंचा। इसे देखकर राजसभा चकित रह गई। अंत तक इसकी परीक्षा लेने के लिए इस नग्न पुरुष के सामने कई सुंदर वेश्याओं को प्रस्तुत किया गया। इन स्त्रियों ने उससे तरह-तरह का मजाक किया, छेड़-छाड़ की। पर उसकी स्थिति में हेरफेर नहीं हुआ। राजा चकित हुए और उसे बहुत-सा इनाम दिया।

एक दिन एक विचित्र घटना घटी। मैसूर नगर में एक फकीर आया। कीकर के कांटे भरी एक गाड़ी में नंगे बदन चित लेटकर वह कुंदणमट्टी पहुंचा। यह देखकर राजा ने उस फकीर को पुरस्कार दिया। कृष्णय्या तक समाचार पहुंचा। उसके दूसरे दिन गाड़ी भर बबूल के कांटे बिछवाकर वह उस पर नंगे बदन लेटा। ऊपर से शरीर पर पत्थर के दो बड़े खंड रखवाये और उसी कुंदणमट्टी मैदान मे राजा साहेब की शिवपूजा की बेला में आ पहुंचा। शिवपूजा संपन्न करके, दीवानखाने से निकलते समय राजा साहब को यह खबर मिली। राजा साहब ने खिड़की से देखा। रनिवास की स्त्रियों ने झरोखे से देखा। गाड़ी ने महल के मैदान में तीन चक्कर काटे। कृष्णय्या के साहस से प्रभु खुश हुए और उसे फिर से इनाम मिला।

और भी एक आश्चर्यजनक घटना घटी। उस जमाने में एक संन्यासी मैसूर आया था। कुप्पण्णा के बगीचे के पश्चिम में पूर्णय्या की खुंदक में अवधूत सूर्यनारायण का चंदोबा था। बैरागी उसी में ठहरा। यह संन्यासी हर दिन एक सेर कच्चा जमालगोटा खाता था। महल के केरानी कार्यालय से जमालगोटा पहुंचाने की राजाज्ञा हुई थी। इसकी आपूर्ति का काम चित्रकार तिप्पण्णा को सौंपा गया था। इस चित्रकार तिप्पण्णा पर राजासाहब की बड़ी कृपा थी। रात के कुछ घंटे छोड़कर बाकी सारा समय तिप्पण्णा राजा के पास ही रहकर शतरंज, गंजीफा आदि खेलों से उनका मन रखता था। राज दरबार में तिप्पण्णा का बड़ा मान-सम्मान था, फिर भी यह किसी को हानि नहीं पहुंचाता था। यथाशक्ति लोगों का हित ही साधता रहता। दूसरों से असंभव कार्य भी इससे बन जाते थे। जीवन-मुक्ति, तस्वीर का खेल आदि खेलों का आविष्कारक यही था। कई लोग इसके घर में हाजरी दिया करते थे। एक दिन प्रातः आठ बजे इसके घर की मंजिल पर कई लोग जमा थे। बहुरूपिया कृष्णय्या भी उपस्थित था। उसी समय बैरागी के लोग आये और जमालगोटा मांगने लगे। पूछताछ से कृष्णय्या ने बात जान ली। उसने कहा, "तिप्पण्णा जी! सवीर, वत्सनाभि, चूहे का जहर आदि नवविषों को मंगाकर कुटवाकर बुकनी मंगवाइए, मैं आपको एक चमत्कार दिखाऊंगा।" तिप्पण्णा देखना चाहते थे कि यह बहुरूपिया अब कौन-सा गुल खिलायेगा। तो उसने केरानी कार्यालय से नवविष मंगवाये। चूर्ण को चांदी की थाली में कृष्णय्या के सम्मुख रखा। कृष्णय्या ने उसे वैसे ही भकोस डाला जैसे सत्तू को स्वाहा करते हैं। उसी समय महल से बुलावा आया तो तिप्पण्णा चल पड़ा। उपस्थित लोग कृष्णया की इस कार्रवाई से घबरा उठे। एक-एक करके वे सब खिसक गये। कृष्णय्या अकेला रह गया। कृष्णय्या भी घर चला, आह्निक संपन्न करके, खाया-पीया और आराम से सो गया। दोपहर चार बजे जागकर

पान खाने बैठा। इधर महल में तिप्पण्णा भी घबरा गया। उसने और प्रातः उसके घर में उपस्थित अन्य सज्जनों ने सोचा कि अब कृष्णयूया जिंदा नहीं है। तिप्पण्णा बार-बार कृष्णयूया की खबर लाने नौकरों को दौड़ाता रहा। यह सुनकर कि वह आराम से घर में पान खाकर बैठा है, तिप्पण्णा ने प्रभु के कानों तक बात पहुंचाई। सारा दरबार आश्चर्यचकित हो गया। महल में बुलाकर देखने पर कृष्णयूया भला-चंगा था। प्रभु ने उसका विशेष सम्मान किया।

किस मंत्रशक्ति, किस उपासनाशक्ति से वह इन अतिमानव चमत्कारों को साधता था, उसे कोई नहीं जानता था। ऐसे व्यक्ति से मिलकर मंत्रमूर्ति शेषयूया ने सदाशिव दीक्षित की बहू की स्थिति से उसे परिचित कराया। ऐसे विषयों में ये दोनों रत्नाकर महोदधि जैसे थे, फिर भी सीतम्मा की व्याधि का रहस्य नहीं जान सके। अंत में वे इस निर्णय पर पहुंचे कि प्रत्यक्ष-रूप से रोगी की स्थिति का अनुभव प्राप्त किये बिना किसी निर्णय पर पहुंचना असंभव है। पशुपति सांबशास्त्री व सदाशिव दीक्षित को बताया गया। शेषयूया कभी अपने स्थान से हिलनेवाले न थे। गांव पहुंचकर सीतम्मा की स्थिति का अध्ययन करने के लिए कृष्णयूया राजी हो गया, पर इसके लिए राजा साहब की अनुमति आवश्यक थी।

अनुमति प्राप्त करने के लिए पशुपति सांबशास्त्री और सदाशिव दीक्षित महल पहुंचे। शिवपूजा के संपन्न होने पर निर्मल वस्त्रों में ही कुछ समय तक विद्वद्गोष्ठी में बैठने की आदत के अनुसार राजा साहब के नामतीर्थ दीवानखाने में पंडितों के बीच विराजने का समय साधकर पशुपति सांबशास्त्री ने निवेदन किया, "महाप्रभु! कृष्णयूया को सप्ताह भर के लिए संजवाडी ले जाने की अनुमति प्रदान करें तो बड़ी कृपा होगी।" उसने सीतम्मा की स्थिति का वर्णन किया। प्रभु ने कहा, "सीतम्मा हमारे वज्रशावक की बहू है न! मैं शादी में भी आया था। लगता है शादी अभी-अभी हुई है। तुम्हारा वर्णन विचित्र-सा लग रहा है। दाल में कुछ काला है, धोखा हुआ है। सुनने में आया था कि वज्रशावक की पत्नी बहू को बहुत सताती है। क्या अब भी वही स्थिति है?" पशुपति सांबशास्त्री इसका उत्तर न देकर चुपचाप खड़ा रहा। सदाशिव दीक्षित ने यह सोचकर सिर झुका दिया कि राजसभा तक पत्नी के अविवेक का समाचार पहुंचा है, तो उसके जीने से क्या लाभ। वह चुपचाप सिर नीचा करके खड़ा रहा। तब प्रभु ने सान्त्वना दी, "वज्रशावक! इतना खिन्न होने की जरूरत नहीं। यह गृहच्छिद्र कहां नहीं है, बताओ। देवता इससे बच न सके, पांडव आदि इसके शिकार हुए। संकोच न करो। बहुरूपिया कृष्णयूया को अवश्य ले जाना। " कृष्णयूया ने अर्ज किया कि पांच-छः दिन में पिता का श्राद्ध करके वह चलनेवाला है।

पशुपति सांबशास्त्री और सदाशिव दीक्षित वहां से घर लौटे, भोजन किया और आराम करने लगे। उसी समय पिता के नाम महादेव का पत्र लेकर हरकारा आ पहुंचा। पत्र में यह लिखा था—

तीर्थरूप के चरणारविंदों में बालक महादेव का साष्टांग नमस्कार। इस वैशाख सुदी

इतवार के दिन यहां सब लोग कुशल हैं। वहां के क्षेम समाचार सहित उपदेश पत्र भेजने की कृपा हो। आपको याद होगा कि सौभाग्यवती को रास्ते पर खुलनेवाले कमरे में लिटाया गया था। हठात् परसों शाम को हा-हाकार मचाती हुई हाथ-पैर पटक कर चिल्लाने लगी। उसे तुरंत ओसारे में ले आकर लिटाया है। चिरंजीवी कृष्ण दिन में कम से कम दस बार रोते हुए मां पर गिरकर लोटता है। उसका दुख मनुष्य मात्र से देखा और सहा नहीं जाता।

इसी बीच एक और आपदा आ पड़ी है। उस दिन संध्या को जब सौभाग्यवती को कमरे से लाकर ओसारे में लिटाया था तब सब कुछ ठीक था। अंदर से दरवाजा बंद करके हम सब सो गये। सवेरे उठकर देखते हैं कि रास्ते की ओर से कमरे में बड़ी सेंध लगी है। छेद में दो आदमी घुस सकते हैं, इतनी बड़ी है वह। चीजें बिखरी पड़ी हैं। बक्से को तोड़कर उधर ही डाला गया है। सौभाग्यवती के अनुदिन पहने जानेवाले आभूषण जैसे कंठी, चूड़ामणि, बालफूल, झुमके और बालियां जो दरवाजे के पीछे के ताक पर रखे थे नहीं दिख रहे हैं। सीता ने उन्हें उधर ही रखा था, मैंने भी देखा था। और क्या कुछ खो गया है, पता नहीं। पत्र को देखते ही सारा काम-काज छोड़कर चले आइयेगा। घर में स्त्रियां बहुत डर गई हैं और आपकी राह देख रही हैं। आप जैसा उचित समझें वैसा इस मामले को निपटायें। वहां सबको मेरा साष्टांग प्रणाम कहें।

इति-साष्टांग नमस्कार।

पत्र में यह सब लिखा हुआ था। उसे पढ़कर सदाशिव दीक्षित ने कहा, "यह हमारा बुरा वक्त लगता है। मामा जी, मैं तुरंत चल पडूंगा। वहां की स्थिति की सूचना पत्र द्वारा दूंगा। बाद में आप कृष्णयूया को बुला लाइए।" फिर वह गांव लौटा। लौटते समय उसने नगर के आमील से चोरी की शिकायत की। किलेदार और आमील ने इनके घर चोरी के लिए खेद प्रकट किया। किलेदार ने घर आकर निरीक्षण भी किया। चोरों का पता लगाकर उन्हें दंडित करने का वादा करके लौट गये।

15

अमासे की कहानी

अचानक एक दिन कंपनी सरकार के सैनिकों ने आठ व्यक्तियों को मैसूर लाकर सर अमीन के दफ्तर में एक पत्र दिया। उसे पढ़ने के बाद बड़े अधिकारियों की सम्मति पाकर सर अमीन ने उन आठ लोगों को श्रीरंगपटण्ण के गंजाम कैदखाने के दारोगा के पास रवाना किया। उन आठ व्यक्तियों को अलग-अलग कमरों में बंद कर उन पर पहरा बिठाया गया। इन कमरों में चाकरों के वेश में मात्र जासूस जाते थे और कैदियों से वार्तालाप करते थे। दूसरे किसी को अंदर प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। ये जासूस बंदियों से मीठी-मीठी बातें करते, स्वादिष्ट भोजन खिलाते, हितैषियों जैसा बर्ताव करते, अपने सुख-दुख की गाथा उन्हें सुनाते। असलियत के साथ झूठ भी मिलाकर बोलते, उनका विश्वास प्राप्त करते और एक-एक करके उनका रहस्य निकालते। साथ-साथ आये ये आठ बंदी अलग अलग रखे गये थे, एक दूसरे की कुशल भी नहीं जान सकते थे। मौके का लाभ उठाकर जासूसों ने चतुर-उपायों से उनसे कुछ रहस्य पाने की कोशिश की, पर उनका परिश्रम बेकार गया। आठ में से सात व्यक्ति कई बार जेलखानों की हवा खा चुके थे। जासूसों की फुसलाहट और सिपाहियों की मारपीट की उन्हें आदत-सी हो गई थी। इसलिए वे हमेशा "मैंने नहीं देखा", मैं नहीं जानता" का ही राग अलापते रहते, पर उनमें से एक कारावास के लिए नया था, सबसे छोटी उम्र का था। इसके हितैषी बनने का अभिनय करनेवाला गुप्तचर बहुत चतुर था। वह इस युवक को रास्ते पर लाने में समर्थ रहा। जासूस की रामकहानी से प्रभावित होकर, उसकी मीठी बातों के जाल में फंसकर, युवक ने अपनी जीवनकथा यों सुनाई :

हिमवद्‌गोपाल नामक पर्वत की तलहटी में बसे एक गांव में मैंने जन्म लिया। गांव का नाम मैं नहीं जानता। पिता बहुत गरीब थे, माता एक पैर से लंगड़ी ; कोई काम नहीं कर सकती थी। उसने दो बच्चों को जन्म दिया। एक लड़की और एक लड़का। पिता मेहनत मजदूरी करके जीवनयापन करता था। सुनते हैं कि मेरा जन्म इतवार को अमावस्या के दिन चित्रा नक्षत्र में हुआ था। गांव के ज्योतिषी ने पिता को बताया था कि मेरी जन्म-तिथि, दिन और नक्षत्र अशुभ कारक है। अमंगल के आगमन के भय से सदा पीड़ित पिता एक वर्ष के भीतर चल बसा, और छः महीनों में मां भी मर गई। तब मैं डेढ़ साल का था और बहन पांच की। तब अपने भाई से लड़नेवाला चाचा हम दोनों को अपने घर ले गया। उसने हमारे हिस्से के घर और जमीन को हथिया लिया। हम अनाथों को चाची बहुत मारती थी, दिन में एक

जून भी खाने को नहीं देती थी। पति से शिकायत करके हमें पिटवाती, हमसे हमारे बूते के बाहर का काम करवाती। इस तरह हमें सताती थी। हम पहाड़ी इलाके में रहते थे। ठंड बहुत पड़ती थी। ओढ़ने को हथेली भर कपड़ा न था, हम नंगे बदन घूमते थे। एक फटा कंबल था जिसे पिता का बताते थे। उसी को ओढ़कर हम भाई-बहन जमीन पर लेटते थे। तीन साल की उम्र से सारी घटनाएं मुझे याद हैं। दिन भर मिली सूखी घास को कंबल में लपेट कर रखते थे। रात को उसे गाय गोठ में बिछाकर लेट जाते थे। बथान के चारों ओर कांटेदार घेरा था। उसमें कोई दरवाजा न था। उस समय मैं पांच साल का था और बहन नौ की। हम रागी[1] पीसते। छोटे बर्तन में पानी भर-भर कर दूर के फासले से लाते और एक बड़ा घड़ा भरते थे। हमें मवेशी के लिए और घर के इस्तेमाल के लिए भी पानी भरना पड़ता था। घड़े में पानी लाने के लिए चाची मजबूर करती थी। बहुत गहराई से पानी ला-लाकर हम घड़ा तो भर देते पर उसे उठाते कैसे? दोनों से न बनता। एक दिन मेरी बहन ने वहां पड़े दो डंडे को घड़े की गर्दन पर दोनों ओर अटकाकर रस्सी से बांध दिया। फिर डंडों के एक छोड़ को मैंने और दूसरे छोड़ को बहन ने पकड़ कर उठाया। हम चार कदम आगे बढ़ते और घड़े को जमीन पर रखते, किसी तरह घर तक पहुंच गये। हांफ रहे थे, दोनों को बहुत कष्ट हो रहा था। बड़ी खुशी हुई कि आखिर घर तक घड़े को पहुंचा दिया। शीघ्र घर के अंदर ले जाकर चाची को खुश करने की जल्दी थी। हमारी किस्मत फूटी थी। हम दहलीज पार कर न सके, उससे टकराकर घड़ा फूट गया। सारा घर पानी से भर गया। चाची ने देखा, हमारी खूब मरम्मत हुई। मुझे मार से बचाने के लिए बहन चाची से रो-रोकर प्रार्थना करने लगी, "चाची! भाई को मत मारो मुझे मार लो, पर।" वह अपने हाथ की आड़ से मुझे बचाने लगी। चाची और गुस्से में आई। "भाई को बचाने निकली है," कहकर मुझे और बहिन को खूब मारा, पीटा। कुछ ही देर बाद चाचा भी आया। चाची ने झूठमूठ उससे शिकायत की। वह भी हम पर क्रुद्ध हुआ। जमीन पर पड़ी बेंत को उठाकर बहुत मारा। शरीर भर में निशान निकल आये। खून बहने लगा। उस दिन भूखे रहे। रात हुई। दरवाजा बंद करके चाचा-चाची सो गये। कंबल अंदर रह गया। नंगे बदन गोठ में बैठे रहे। ठंड पड़ रही थी, भूखे थे। मारपीट का दर्द। नींद नहीं आयी। तिस पर बाघ-लकड़बग्घे का उपद्रव। एक बाघ गरजते हुए कुटिया तक आया। हम घबरा गये। कांपते हुए बैठे-ही-बैठे हमने पेशाब कर लिया। बाघ चला गया। मेरी दीदी ने सुझाया, "चलो, पोखरे में डूब मरेंगे।" यह मरना क्या चीज है, मैं नहीं जानता था। मुझे ऐसा करने से चाची मारेगी ऐसा डर था। मैंने कहा, "दीदी! ऐसा करने से चाची मारे तो? मैं और मार नहीं खा सकता।" दीदी बहुत दुखी हुई। "मेरा नन्हा" कहकर मुझे गले से लगाकर बहुत रोई। सवेरा हुआ। हम उठ नहीं पा रहे थे। जिस किसी तरह उठे, बाहर निकलकर खड़े हो गये। दरवाजा खोलकर चाचा बाहर निकला, हमें देखा। पूछा, "रात को तुम लोगों ने खाया क्यों नहीं?" कांपते हुए मैं नीचे गिर पड़ा। अंदर से सूखी रोटी लाकर

1. रागी– जौ, गेहूं जैसा एक अनाज

उसने हमें दिया। रोटी खाकर पानी पीने के बाद जान बची। इसी तरह कष्टमय जीवन बिताते रहे। दीदी रसोई बनाने के लायक बनी। चाची दीदी से रसोई बनवाने लगी। तब से दोनों को भर पेट खाना नसीब होने लगा।

सुनते हैं, हम जाति से मराठे हैं। हमारी बिरादरी में ऋतुमती होने से पहले ही शादी का रिवाज है। दीदी बहुत सुंदर थी। कई लोग उससे शादी करना चाहते थे। चाचा ने पचास अशर्फियों का दान देनेवाले के हाथ में ही दीदी को रखने की जिद पकड़ी थी। शादी से पहले लड़की पुष्पवती हो जाये, तो बिरादरी, वैसे परिवार के साथ हुक्का-पानी बंद कर देगी। इसलिए दीदी मनौती करती थी कि कुछ भी हो, जिस किसी तरह, जिस किसी से, शादी हो जाये। निचली घाटी से एक आदमी कन्या ढूंढने आया। यथावत चाचा ने कहा कि सोने के पचास सिक्के मिलने पर ही कन्या मिलेगी। उस आदमी ने तुरंत पचास अशर्फी गिन दी और कहा कि लड़की को अभी हमारे साथ भेजना होगा। चाची ने कहा, "अभी ले जा। एक जने की खुराक तो बचेगी।" बहन तैयार हो गई। तब चाची ने आदेश दिया, "इस घर की साड़ी उतार रखो। ससुराल के वस्त्र पहनकर जाना।" कन्यार्थी ने कहा, "यह विचित्र बात है। पचास सोने के सिक्के गिने हैं। यदि कन्या को एक साड़ी भी आप नहीं देना चाहते, तो हमें भी आपकी लड़की नहीं चाहिए।" लौटने के लिए वह तैयार हो गया। मेरी दीदी चुप नहीं रही। उसने कहा, "स्वामी! मेरे लिए आपने पचास अशर्फी दी हैं। क्या, आप और एक फटी धोती नहीं देंगे? मुझे एक वस्त्र प्रदान करके मुझे यहां से मुक्त कीजिए।" वह रो पड़ी। उस पुरुष ने बड़ी दया से दीदी को अपनी एक धोती दी। उसे पहनकर दीदी ने मायके की साड़ी उतार दी और मुझसे लिपटकर रोने लगी। मैं जोर से रोने लगा, "दीदी मुझे छोड़कर मत जाना। मैं यह मार सह नहीं सकूंगा।" हमारे दुख को देखकर जीजाजी का दिल पसीज उठा। वे तो मुझे भी साथ ले जाने के लिए तैयार हो गये। पर चाचा ने साफ इन्कार कर दिया। तब दीदी ने मेरा सिर संवारा और बोली, "कहीं भी रहो, मेरे बच्चे! सुखी रहो।" रोती हुई वह चली गई।

दीदी का वात्सल्य मैं भुला न सका। उसकी याद कर-करके मैं रोता था। दीदी को बेचकर मिले सोने के पचास सिक्कों को चाचा ने एक घड़े में रखा था। चाची ने चुपचाप उन्हें चुराया और किसी के साथ वह भाग निकली। खाना पकाने के लिए भी कोई न रहा। अंत में मुझे संग लेकर चाचा गांव छोड़कर चल पड़ा। गांव-गांव भटकता रहा। हर किसी से कहता कि यह लड़का बीस अशर्फियों में बिकाऊ है। साथ ही मेरी जन्म-तिथि, दिन और नक्षत्र भी बताता और कहता, "इस लड़के को खरीदनेवाले को बहुत-सा धन मिलेगा। जोइस ने भविष्यवाणी की है कि लड़का धनी बनेगा।" अंत में हम अरिकुटार क्षेत्र की संजवाडी में पहुंचे। शाम हो गई थी। लाई हुई रोटियां खतम हो चुकी थीं। मैं एक दिन से भूखा था और चाचा दो दिनों से। चाचा की बड़ी गठरी ढोकर उसके पीछे-पीछे भागकर मैं थक चुका था। हम उस गांव के भगवती मंदिर के ओसारे में लेट गये। वहां कई लोग बैठे हुए थे। उन्होंने

हम से कुशल-मंगल पूछा। चाचा ने हमारी कहानी सुनाई। उनमें से करीब पचास वर्ष के अधेड़ उम्र के एक व्यक्ति ने हम पर दया की। हमें घर ले गये, खिलाया और सत्कार किया। हम बहुत भूखे थे। हमने उसकी जाति तक न पूछी। बस भरपेट भोजन किया। उसके घरबार और जीवन क्रम को देखकर समझ लिया कि वह ऊंची जाति का ही होगा। हमारा पेट भर गया था। उसके घर की चौपाल में सो गया। चाचा और उस गृहस्थ ने मेरे बारे में बातचीत शुरू की। मुझे नींद आ गई। न जाने वे क्या बोले। सवेरा हुआ। ओसारे में आठ-दस लोग जमकर बतियाने लगे। मैं बातचीत को ठीक तरह से समझ नहीं सका। उनमें से एक ने कहा, "मादय्या! क्या आगे-पीछे देख रहे हो? तुम्हारी कोई संतान नहीं, लड़का अच्छा है। उसकी जन्म-तिथि, दिन और नक्षत्र देखकर लगता है कि उससे बहुत कुछ काम होना है। पैसे का मुंह मत देखो। जिसकी खोज में निकलना था वह स्वयं द्वार पर आया है। पैसे की परवाह न करो। एक दिन में वह इसका सौ गुना कमा सकता है।" तब तक गांव के सारे पुरुष वहां एकत्र हो चुके थे। उन्होंने भी कहा, "मादय्या आगा-पीछा मत देखो। पैसे लाकर दे दो।" मादय्या ने बीस अशर्फियां लाकर चुपचाप चाचा को सौंप दीं और अपनी खुशी से एक धोती और काला कंबल भी तांबूल के साथ चाचा की भेंट की। इनको स्वीकार करके चाचा ने वहीं भोजन किया। "तुम इनके घर रहो। मैं जा रहा हूं" कहकर चाचा चला गया। गांववाले सब आकर मुझे देख गये। मादय्या की अपनी संतान न थी। घर में पति-पत्नी दो ही थे। उन्होंने मुझे प्रेम से पाला। मैं उनका बेटा बन गया। बिरादरी को भोज दिया गया। अमासे मेरा नाम बना।

मुझे गांववालों की प्रीति मिली। मार का जमाना चाचा के साथ ही खत्म हो गया। भगवती के मंदिर के पिछवाड़े के अखाड़े में मुझे ले गये। मुझे कसरत सिखाई। बाद में मुझे मैदानी-व्यायाम, लाठीबाजी, पटेबाजी, भल्लेबाजी, कुश्ती, दौड़ना आदि सिखाया। मैंने सब कुछ बहुत जल्दी सीख लिया। उनमें नये पैंतरे दिखाये, नई पकड़ों का प्रदर्शन किया। इसे देखकर गांववाले दंग रह गये। सभी मेरी खातिरदारी करते थे और खिलाते-पिलाते थे। घर पर सुस्वादु भोजन मिलता था। मैं ऊंचे कद का बना। दिन-ब-दिन मेरा हौसला बढ़ता गया। कोई काम मेरे लिए कठिन न था। मैं निर्भीक था, हर काम में अगुवा था। दूसरों के लिए दुष्कर कार्य मैं आसानी से कर डालता। मैं अठारह साल का हुआ। एक शुभ दिन मेरा मुंडन हुआ, चोटी जाती रही, नये कपड़े पहनाये गये, मुझे फूल माला चढ़ाई गई। गांववाले सब एकत्र हुए। मुझे भगवती के मंदिर ले गये। तीन बार परिक्रमा कराके प्रणाम करवाया। भगवती की आरती हुई, मुझे प्रसाद मिला, मुझे कुंकुम लगाया गया। चांदी मढ़ी काली छड़ी से अप्पाजी नामक भगवती के पुजारी ने तीन बार मेरे सिर से नीचे तक जाप करते हुए संवारा। फल और नारियल दिये गये, प्रसाद मिला। सबने मिलकर मुझे घर पहुंचाया। मैं मादय्या को पिता और उसकी पत्नी को मां कहकर पुकारता था। उसी दिन गांव के बड़े-बूढ़े मिले। मुझे भी बुलाया गया। मेरे पिता मादय्या ने मुझे बताया- इस गांव के लोगों में एकता

बहुत मजबूत है। वर्षाकाल और अंधेरे के मौसम में हम गांव को छोड़कर जंगल के मार्ग से चलते हैं। हमारे रास्ते कोई नहीं जानते, केवल हम जानते हैं। ऐसा इसलिए करते हैं कि कोई हमें पकड़ न पाये। दूर देशों में पहुंचकर अमीरों के घरों में सेंध लगाते हैं। अंदर घुसकर जो चीज मिले, उसे उठा लाते हैं। गांववाले सब एक निर्णय कर चुके हैं कि कोई भी इस सिलसिले में पकड़ा जाय तो वह और किसी का नाम नहीं लेगा। भगवती मंदिर का अप्पाजी भविष्यवाणी करता है कि हमें सफलता मिलेगी या नहीं। साथ ही वह प्रसाद बांटकर हमें उचित सूझबूझ भी देता है। इसलिए जो माल लाते हैं उसमें से दसवां हिस्सा उसे देते हैं। सेंध में घुसकर माल बाहर पहुंचानेवाले को दसवां हिस्सा मिलता है। नगर के आमील और किलेदार आदि को और एक दसवां हिस्सा पहुंचा दिया जाता है। बचे सात हिस्सों को हम सब बराबर बांट लेते हैं। सेंध में घुसनेवाले का जन्म चित्रा नक्षत्र में अमावस्या के दिन आदित्यवार में होना अनिवार्य है। तुम्हारा जन्म ऐसे ही दिन हुआ है। तुम यह काम बहादुरी से कर सकते हो?

अमासे : मैं किसी भी काम से नहीं डरता। कोई रहस्य नहीं बताऊंगा। पर सबका व्यवहार न्यायोचित हो। एकता मजबूत हो।

मादय्या : बिना डरे तुम काम करो, वह काफी है। हम सब मिलकर काम करेंगे। कल ही सब निकल रहे हैं, तुम्हें भी उन्हीं के संग चलना होगा। इसीलिए आज मंदिर ले जाकर रस्म पूरी की है। तुम्हें जो करना है मैं समझा रहा हूं, ध्यान से सुनना है। सेंध में घुसने से पूर्व की रात खूब सोना। सवेरे उठकर सिर मुंडाना। चोटी को निकलवा देना ताकि कोई तुम्हें चोटी से नहीं पकड़ सके। उस दिन दोपहर आधा पेट खाना, रात को दूध पीना। भात मत खाना। यदि खाओगे तो पकड़े जाने पर बचकर निकलना मुश्किल हो जायेगा। बदन पर खूब तेल मलना ताकि कोई पकड़े तो फिसल जाय। करधनी और कौपीन वल्कल से बने हों, पकड़ने पर टूट जायेंगे। मुंह पर कालिख पोतना होगा ताकि कोई पहचान न पाये। पकड़े जाने पर पकड़ने वाले व्यक्ति के मर्मांग पर घात करके निकल जाना है। वल्कल की करधनी पर एक छुरा बंधा है। किसी के जोर से पकड़ने पर छुरे से गले पर या पेट पर वार करके बच निकलना है। अंदर घुसकर निरीक्षण करते समय बहुत सजग रहना पड़ता है। दीवार से सटाकर छोटी-छोटी पेटियां रखी मिलती हैं। पहले उन्हें बाहर पहुंचाना होगा। बड़ी पेटियों के ताले दूसरी चाबियों से खोलकर गहने निकालना होगा। स्त्रियों के पहने गहनों को ऐसे उतारना चाहिए कि उनकी नींद न खुले। कंठी को कैंची से काटना होगा। हाथ-पांव के गहनों को पेंच घुमाकर उतारना होगा, सावधानी से, धीरे से। कभी

> मंगलसूत्र नहीं छीनना। स्त्रियों पर मोहित नहीं होना। घर से निकलते वक्त गृहस्वामी और स्वामिनी को प्रणाम करके चलना होगा। सेंध में प्रवेश करते ही बच निकलने के लिए अंदर से महाद्वार तक या पिछवाड़े तक के दरवाजों को खोल रखना है। चोरी करने आये किसी भी व्यक्ति को चोट लगी तो वह जिंदा हो या मरा उसका सिर काटके ले चलना होगा। पकड़ने के लिए बहुत से लोग टूट पड़ें तो लाठी चलाकर भाग निकलना चाहिए। तुम्हारा यही कर्तव्य है, बाकी सब अपना-अपना काम कर देंगे। जिस घर में रात को सेंध लगानी है दिन में संन्यासी, जोगी, जंगम या जोइस के वेश में वहां पहुंचकर गीत गाते हुए, मीठी बात करते हुए घर के भीतर घुसकर स्थिति को जानना होगा। रात को एड़ी आगे और उंगली पीछे अर्थात उल्टे जूते पहनने होंगे।

मेरे बाप ने चोरी करने और सेंध लगाने के अनेक रहस्य बताये। ध्यान से मैंने सब कुछ सुना। मुझे उनमें से कोई बात ऐसी नहीं लगी जिसे मैं न कर पाता।

दूसरे दिन निर्णय के अनुसार मैं कोयमत्तूर पहुंचा। सब साथी अलग-अलग आये। दिन भर हम अलग रहकर रात के समय इकट्ठे होते थे। पता चला कि कलेक्टर की कचहरी का हेड मुन्शी नवनीतविलिप्तांगैयर दोनों हाथों से लूट-लूट कर धन कुबेर बन गया है। दिन के समय निगाह रखते हुए एक रात हम लोगों ने अपना करतब दिखा दिया। "जय परमेश्वरी" कहते हुए मैं अंदर घुसा। दस-पंद्रह हजार रुपयों के सोने के गहने मिले। सब लादकर जंगल की राह से रात-दिन यात्रा करते हुए गांव वापस पहुंच गये। मुन्शी और दूसरे रिश्वतखोरों के बीच झगड़ा हो गया था। बाद में सुनने में आया कि सरकार ने उन्हें पकड़कर खूब सताया।

पहली बार ही मैं इतनी संपत्ति लाया तो गांव वाले बड़े खुश हुए। इसी प्रकार हम लोगों ने श्रीरंग, तिरुचैरपल्ली, कुंभकोण, मदुरै, सेल्व, दिण्डिगल, धारापुर, तिन्नवेल्लै आदि प्रदेशों में अनेक ग्रामों में जाकर खूब कमाया। कई गांवों में घरों के अंदर लोगों ने मुझे पकड़ लिया था, पर मैं निकल भागा था। कइयों को मैंने छूरा मारा। सुनते हैं कि उनमें से कई चल बसे। मैं रुपयों को नहीं छूता था। सोना, चांदी और हीरों को छीनकर सेंध से बाहर देता था। यथा संभव गांव लाने के बाद गहनों को पिघला देते थे। तात्लुकवालों के हिस्से जेवर के रूप में ही देते थे। चामराजनगर के आमील, किल्लेदार आदि के घरों में आज भी हमारे दिये हुए गहने हैं। जब मैं सेंध में घुसता तब तलवार, कंजर, लाठी, गोफन आदि से लैस हमारे आदमी चारों ओर पहरा देते थे। सेंध से जैसे ही मैं जेवर बाहर पहुंचाता वैसे ही हमारे आदमी उन्हें हाथों हाथ गायब कर देते थे। घर के सौ गज फासले में जो कोई आता वह जान से हाथ धो बैठता। हमारे साथी बड़ी तेजी से दौड़ते थे। पेटी गाड़ी, घोड़ा गाड़ी ऐसे नाम वाले साथी उन्हीं गाड़ियों के वेग से दौड़ते थे। दीवारमार और गुफासिद्धेश्वर तो सेंध लगाने में बड़े निपुण थे। सेंध लगाने में हर एक की अपनी कला होती थी। बाहर बैठकर एक व्यक्ति ऐसी

सेंध लगाता था जिसे देखकर लगता था कि यह अंदर से लगी हुई है। वह बहुत चतुर था। हम कई भाषाएं जानते थे। हमारे साथी तरह-तरह के वेष धारण करने में सिद्धहस्त थे। एक जंगली सूअर का वेष धारण करके "गोर-गोर" आवाज करते हुए निकलता था। इसका नाम वराह था। दूसरा भालू का वेष बनाता था। उसका नाम जांबव था। रात के समय कोई हमारा पीछा करता तो सूअर और भालू उन्हें डराकर भगा देते थे। इस तरह की तैयारी करके मैदानी प्रदेश के कई गांवों में धनवानों के घरों को हम लोगों ने सफाया कर डाला।

एक बार एक आश्चर्यजनक घटना घटी। सत्यमंगल कस्बे में एक बड़ा गांव है। खबर मिली कि वह एक धनिक महतो का है। उस इलाके में महतो के लिए गौड़ शब्द चलता है और हमारे यहां गौड़ा। हम वहां पहुंचे। ताक में बैठे रहे। मैं गांव की एक गली से गुजर रहा था। रात को जिस घर में सेंध लगानी थी उसी घर से एक स्त्री बाहर निकली। देखने में सुंदर थी। उसकी गोद में एक बच्चा था और एक बच्चे का हाथ पकड़े घर से बाहर आई। उसने बहुत से गहने पहने थे। मुझे बड़ी खुशी हुई। रात की हमारी योजना के सफल होने के अच्छे लक्षण दिखते थे। उसके घर के सामने से जब मैं गुजर रहा था तब देखा कि वह स्त्री मुझे घूरकर देख रही है। सोचा कि नया चेहरा है, इसलिए देख रही है। फिर भी डर के मारे कदम जोर से आगे बढ़ाया। उसने पुकारा, "भाई! तुम कहां के रहनेवाले हो?" उत्तर दिये बिना मैं आगे बढ़ रहा था, तो उसने फिर मुझे पुकारा "अरे! तू जयप्पा है न?" पिता ने मेरा यही नाम रखा था। इस नाम से पुकारनेवाली स्त्री को मैं देखना चाहता था चाहे कुछ भी हो जाय। पीछे मुड़कर देखा और मैं उधर ही रुक गया। वह स्त्री मेरे पास आकर खड़ी हो गई। मुझे गौर से देखकर बोली "जया! मेरे बच्चे! तू कहां से आया?" उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे। तब मैंने पहचान लिया। वह मेरी दीदी थी। मुझे भी दुख हुआ। दोनों रो पड़े। वह मुझे अपने घर ले गई। हम लोगों को बचपन के सारे कष्ट याद आये। हम फिर से रो पड़े। पति के साथ उसके चले जाने के बाद की कहानी मैंने सुनाई। चाचा और चाची की करतूतों का भी विवरण दिया। पर अपने गांव और वृत्ति के बारे में मैंने कुछ नहीं बताया। कहा कि मैं व्यापारी हूं, अतः यहां आया था। दीदी ने बताया कि वह बहुत सुखी है और वे धनवान भी हैं। यह भी बताया कि उसके छः बच्चे हैं, तीन लड़कियां और तीन लड़के। मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। उसने मुझसे वहीं रह जाने के लिए कहा। मैंने इन्कार कर दिया। अंदर पत्तल बिछाकर मुझे बुलाया। मैंने कहा कि मैं अंदर नहीं आ सकता, मैं बाहर ही खाऊंगा। बाहर ही परोसा और मैंने खा लिया। मैंने तांबूल स्वीकार किया। बच्चे आये, मुझे प्रणाम किया। दीदी ने अनुरोध किया कि मैं वहीं रह जाऊं। वह अपनी दूसरी लड़की से मेरी शादी करेगी। मैंने फिर कभी आने का वायदा किया। बताया कि मेरे मालिक चल पड़े हैं। दीदी आंसू बहाने लगी, फिर विदा किया। मुझे भी दुख उमड़ आया। पुरानी कहानी फिर से याद आई। बचपन में मेरे प्रति दीदी का प्यार, चाची की मार से उसका मुझे बचाना मैंने सब याद किया। दुख को थामकर, दीदी को प्रणाम किया और वहां से चल पड़ा। मन अशांत था कि रात को क्या

करेंगे? सेंध लगाकर, अंदर जाकर लूटूं तो दीदी के प्रति द्रोह होगा। इन्कार करूं तो साथी जिंदा न छोड़ेंगे। आतंक बढ़ता गया। अंत में एक निर्णय पर पहुंचा। उस दिन कमर में काला कपड़ा बांध रखा था। अंधकार के कारण किसी ने उसे नहीं देखा। सेंध के भीतर घुस पड़ा। कुछ समय तक भीतर ही रहा। सोने के बाजूबंध को टुकड़े करके करीब तीन सेर सोने को काले कपड़े से निकालकर दीदी के सिर के नीचे रखकर, उसे प्रणाम करके बाहर निकला। साथियों ने पूछा कि मामला क्या है। झूठ कहा कि सारी संपत्ति तहखाने में बंद कर रखी है। ऊपर कुछ नहीं मिला।

एक बार और एक विशेष घटना घटी। किसी भी गांव पहुंचने पर हम लोग एक साथ नहीं ठहरते थे। हर आदमी अलग-अलग रहता था। उस गांव के नजदीक थोड़ी दूरी पर एक मंदिर था। वह बहुत बड़ा था। आंगन, ओसारे आदि बहुत सुंदर थे। मैं ओसारे में ठहरा। चारों ओर घना जंगल था। आसमान छूनेवाले पेड़ थे। दोपहर में भी धूप जमीन तक नहीं पहुंचती थी। घना अंधकार रहता था। भेड़िये, लकड़बग्घे आदि अधिक संख्या में थे। मंदिर के पास एक छोटी नदी बहती थी। उसके दोनों किनारे वन तुलसी, जंगली मोगरा, वनचंपक आदि फूल बहुतायत में खिले थे। उन्हें चुननेवाले नहीं थे। फूलों की सुगंध से सारा वनप्रदेश महक रहा था। देखने में दृश्य मनमोहक था। मैंने नदी में नहाया, फूल चुने। मंदिर की देवमूर्तियों पर फूल चढ़ाता गया। मंदिर में मेरे प्रवेश के वक्त से ही किसी के रोने की आवाज सुनाई पड़ रही थीं मैंने सारे मंदिर को छान मारा। कोई दिखाई नहीं पड़ा। गर्भगृह में यह रुलाई ज्यादा सुनाई पड़ रही थी। यह देखने कि वहां कौन है? मैं अंदर गया। पर दरवाजे पर ताला पड़ा था। मैंने ताले को तोड़ा। ताला तोड़ना मेरे लिए कोई कठिन काम न था। दरवाजा खोलकर अंदर गया। अंदर अंधेरा था। एक दिया टिमटिमा रहा था। उसके सहारे चारों ओर देखा। वहां एक ओर आसन लगे थे, उन पर वस्त्र बिछाया गया था। नारियल, केले, कुंकुम, हल्दी, मंत्र अक्षत, फूल, तांबूल, सेर भर चावल, केले के चार पत्ते आदि मंगल-द्रव्य सजाये गये थे। किसी मंगल कार्य की तैयारी थी। मेरे अंदर जाते ही आवाज रुक गई। मैंने वहां सब ओर ढूंढा। एक कोने में एक सुंदर स्त्री बैठी थी। मैंने पूछा कि तुम कौन हो? वह नहीं बोली। उसके हाथ पैर कांपने लगे। मैंने ताड़ लिया कि वह भय के मारे कांप रही हैं। मैं बोला, "तुम कौन हो, बोलो भई! तुम्हारा कोई भी कष्ट हो, मैं उसे दूर करूंगा। डरो नहीं।" और जोर से रोते हुए उसने पूछा, "तुम कौन हो?" मैंने उत्तर दिया, "कोई भी हूं, एक परदेशी।" उसने कहा, "हाथ पर हाथ रखकर वचन दो कि तुम मेरा कष्ट दूर करोगे।" मैंने वचन दिया। तब उस स्त्री ने कहा, "मुझे यहां से एक निर्जन स्थान पर ले चलो।" मैं उसे बगल के जंगल में ले गया। वहां एक चट्टान थी। उसके नीचे एक गुफा थी। हम उसमें घुस गये। अंदर ओसारे जैसा ऊंचा स्थान था। बगल में पानी का झरना था। गुफा के मुख द्वार से काफी हवा और प्रकाश आ रहे थे। लाख कोशिश करने पर भी कोई हमारा पता नहीं लगा सकता था। वहां हम दोनों बैठे। तब उस स्त्री ने कहा,

यहां से तीन कोस की दूरी पर मेरी ससुराल है। जाति से हम नोनिये हैं। मेरा पति है, मेरे दो बच्चे हैं। पति मेरा तरुण है, खाते-पीते परिवार का है। गांव में एक धनिक नोनिया है, साठ वर्ष का। उसके तीन पत्नियां हैं, पर संतान नहीं। गांव के कुछ लोगों ने सोचा कि मुझसे उसकी शादी हो, तो उसके बच्चे होंगे। इसलिए बच्चों को मेरे पति के पास छोड़कर मेरा कन्या शुल्क और उस पर एक सौ मोहरें मेरे पति को दिलाकर, मेरे मांगल्य को भी उसे लौटाकर, बाद में उस बूढ़े से मेरी शादी कराना चाहते थे। सुनते हैं कि बूढ़ा उस जाति का मुखिया था। कोई उसकी बात नहीं टाल सकता था। मेरा पति रोते हुए आया और उसने यह समाचार सुनाया। मैंने कहा, "छिः कैसी बात है यह! मेरा एक ही पति होगा, नहीं तो प्राण दे दूंगी। नीच नोनियों का यह कैसा रिवाज है? एक की पत्नी को दूसरे के हाथ सौंपना भी कोई जाति पद्धति है? यह संभव नहीं है। मैं उसके गहने नहीं चाहती, तुम ही मेरे भूषण हो। बच्चों को और तुम को छोड़कर मैं कहीं जानेवाली नहीं।" बाहर रहनेवाले लोगों ने इन बातों को सुना, मुझे मनाने की बड़ी कोशिश की। मैंने नहीं माना। वे सब उठकर चले गये। आठ-दस दिन बीते मैं खेत पर काम करते हुए पति के लिए भोजन ले जा रही थी। आसपास कोई न था। पीछे से आकर किसी ने कपड़े से मेरी आंखें बांध लीं। और किसी ने मेरे मुंह पर कपड़ा ठूंसा। खाने की टोकरी और पानी का घड़ा न जाने कहां पर गिर पड़े? मेरे हाथ-पैर बांधकर मुझे उठा ले गये। अंत में यहां लाये और आंखें खोलीं। देखती क्या हूं कि शादी की तैयारी हो गई है। यही सारा सामान यहां एकत्रित है। यह विपत्ति मेरे सिर पर टूट पड़ी है।

मैंने सांत्वना दी, "माता! डरो मत। तुम्हारे पति और पुत्रों से मैं तुम्हें मिलाऊंगा।" उसने उत्तर दिया, "इतना उपकार करोगे तो तुम्हीं मेरे ईश्वर होगे।" मैंने उसे रोटी दी, मैंने भी खाई। इसके बाद बैठकर मैंने आराम किया। वहां और कोई न था। उस स्त्री के रूप और यौवन को देखकर मेरा मन चंचल हुआ। मेरे पिता मादय्या ने यह भविष्यवाणी की थी कि परस्त्री में आसक्त होते ही हमारा गांव उजड़ जायेगा। मुझे उसकी याद आई। मैंने मन पर काबू पाया, उस स्त्री को अपनी दीदी के समान माना। हम दोनों जंगल के रास्ते से निकल पड़े। उस रास्ते में पखेरू भी नहीं उड़ रहे थे। उसके पति का गांव था गट्टदमोले। हम लोग उसके निकट पहुंचे ही थे कि दस-पंद्रह हट्टे कट्टे लोग हमारे पास पहुंचे। स्त्री उनको देखकर चीख उठी, "हाय मर गये!"

मैंने मुड़कर देखा। उस स्त्री का हाथ पकड़कर मैंने उन लोगों से कहा, "तुम लोग चाहे कितने भी हो, मैं डरनेवाला नहीं। किसी ने इसे छेड़ा, तो समझो कि तुम्हारी पत्नी की मांग से सिंदूर मिटा।" किंतु उन लोगों ने मेरी बात न मानी, उस स्त्री पर आक्रमण करने लगे। मैंने उसे जमीन पर बिठाया। मेरे पास गुप्ती नामक तलवार थी। उसे चलाते हुए उस स्त्री के चारों ओर परिक्रमा करने लगा। किसी एक स्थान पर न रुककर, उस स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना मैं पैंतरे बदलने लगा, तलवार चलाने लगा। उनमें से आठ-दस लोग घायल होकर जमीन पर गिर पड़े। किसी की टांग कटी तो किसी का हाथ, किसी की नाक

जाती रही, तो किसी का पेट छिल गया, कइयों के कपाल उड़ गये। एक बार गिरे, तो उन्होंने उठने का नाम न लिया। चार-पांच तो इस संसार से ही सिधार गये। तीन-चार ने दूर से ही खड़े होकर इसे देखा, फिर वहां से चीखते-चिल्लाते भाग निकले। और कई लड़-भिड़कर भाग गये। सारा जंगल खून से तर था। मैं उस स्त्री को लेकर गांव पहुंचा। रात के भोजन का समय था। पुकार कर दरवाजा खुलवाया। हम दोनों अंदर गये। घर के सभी लोग रो रहे थे। पति तीन दिन से भूखा था। बच्चों को खिलानेवाला कोई नहीं था, तो बच्चे भी भूखे थे। उन्हें तुरंत उठाया। सब बिलख-बिलख कर रोने लगे। हम दोनों ने उस स्त्री की विपत्ति की कहानी सुनाई। उसके बच निकलने का भी इतिवृत्त बताया। मैं अपनी वीरता को छिपाकर विवरण देता तो वह मेरे प्रताप का बखान करती। सारी कहानी सुनकर सब खुश हुए। मेरा खूब आदर-सत्कार हुआ। कहने लगे, "तुम हमारे परमेश्वर ही हो। तुम्हारे रूप में भगवान हमारे यहां आया है।" तीन दिन मुझे ठहराया। खूब सत्कार किया, फिर भेट दी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। मेरे साहस से गांववाले चकित रहे।

मैं दूसरे रास्ते से चलकर संजवाड़ी पहुंचा। साथियों ने मुझे ढूंढकर न पाने पर समझ लिया था कि मुझे किसी ने मार डाला है। वे गांव लौट आये। मेरे पिता बहुत दुखी थे। कई लोगों को साथ लेकर पिताजी मुझे ढूंढ़ने के लिए निकलनेवाले थे। मैं उसी समय गांव पहुंचा था। मुझे देखकर वे खुश हुए। पूछा,"तुम पीछे क्यों रह गये? सबको लौटे आठ-दस दिन हो गये। तुम देर से क्यों लौटे?" मैंने उस नोनिये स्त्री की कहानी सुनाई। मेरे पिता ने कहा, "तुमने नेक काम किया। पतिव्रता की रक्षा करने से बढ़कर वीर पुरुष का और कोई पुरुषार्थ नहीं है। बाल-बच्चे, स्त्रियां, वृद्ध, दीन-दुर्बलों की रक्षा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।" आगे उन्होंने कहा, "गांववाले अब तक इसी आदर्श पर चलते रहे। पर-स्त्री से मोह नहीं करना और अपने ही गांव की किसी वस्तु को लोभ की दृष्टि से नहीं देखना—हमारे लिए अब तक परमधर्म थे। अब लगता है कि इसका पालन नहीं होगा। ऐसी बुराई से सारा गांव नष्ट हो जायेगा। भगवती कोल्लापुर महालक्ष्मी ही हमें बचा सकती हैं।"

दो-तीन दिन में हम लोग एक और दौरे पर निकले। रास्ते में इस तरह बातचीत हुई :

अमासे : पिताजी कह रहे थे कि परस्त्री और गांव के ही दूसरों की संपत्ति पर कुदृष्टि नहीं डालनी चाहिए। अब यह धर्म लुप्त हो रहा है। न जाने पिताजी ऐसा क्यों कहते हैं।

चोर वरदा : तुम्हारे पिता बूढ़े हैं, उन्होंने दुनिया देखी है। वे सच कहते हैं। उस अप्पाजी का दिमाग आजकल ठिकाने पर नहीं है। उस ब्राह्मण उपाद्रि के आ मिलने के बाद उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है। उससे पहले कहीं बेसुरापन नहीं था। उसकी भविष्यवाणी अचूक हुआ करती थी।

अमासे : सिद्धा! अप्पाजी ने क्या किया? एक जगह बैठा रहता है। उसका चेहरा निस्तेज है, पहले सी चमक नहीं है।

सिद्धा : वह कैसे संभव है? जैसी करनी, वैसी भरनी। जैसा मन वैसा काम।

कैसी काली करतूत है उसकी!

चोर वरदा : उपाद्रि दीक्षित जी के घर ही खाता रहा। उन्होंने इसकी बहुत सहायता की है। पढ़ाते वक्त बच्चों को मारने से मना किया था। बस, अंदर ही अंदर विष उगलता रहा कि "महादेव की पत्नी अच्छी नहीं। ऐसा-वैसा, कोई भी उसे बिगाड़ सकते हैं" और न जाने क्या-क्या बक कर अप्पाजी का मन बिगाड़ दिया। उपाद्रि की बात पर विश्वास करके वह उस स्त्री पर आक्रमण करने चला। सुनते हैं कि उसने इसकी छाती पर पत्थर से प्रहार किया। कुछ भी हो, अब अप्पाजी छाती के दर्द से कराहता हुआ पड़ा है। मैं इतना जानता हूं।

अमासे : वह बहुत तुनकमिजाज है। वह इसकी थोड़े ही परवाह करेगी? गांववालों की संपत्ति पर आंख लगाना और क्या-क्या कह रहे थे मेरे बापू! कुछ समझ में नहीं आया।

वरदा : ऐसे ही और एक घटना घट गई। किल्लेदार, सूबेदार आदि ने मिलकर उसे यों ही दबा दिया। महादेव की-पत्नी ज्वर से पीड़ित छोटे कमरे में सो रही थी। उपाद्रि यह सब जानता था। अप्पाजी को लुभाकर वह स्वयं अंदर घुसा। पर वह उस रात बाहर सोई हुई थी। पुजारी को बहुत बुरा लगा। गुस्से में आकर उसने कमरे की सफाई कर दी। यह सब बीते कहीं छः-सात दिन हुए। सेंध लगाने हमारा गुफासिद्धेश्वर ही गया था। उसने ही यह रहस्य बताया।

अमासे : मेरे पिता ने बहुत कुछ देखा है न? बिना जाने वे काहे के लिए बोलेंगे? यह सब सुनने के बाद मेरी हिम्मत ही नहीं होती। अब की बार क्या होगा कौन जाने। इस बातचीत के बाद हम लोगों ने जाकर वामनूर में एक जुलाहे के घर सेंध लगाई। अंदर घुसकर जब छान रहा था, तो काले वस्त्र ओढ़कर सोये हुए व्यक्ति पर लापरवाही से पैर रख दिया। अपनी बगल में उसने लाठी रखी थी। उसे उठाकर उसने दो बार दे मारा। पहला प्रहार दाहिनी भुजा पर पड़ा। हाथ की पेटी जमीन पर गिर गई। शोर मचा, घरवाले सब जाग उठे। हाथ का छुरा गुम हो गया था। लाठी की दूसरी मार जांघ पर पड़ी। बेहोश होकर मैं जमीन पर गिर पड़ा। दिया जलाने का अहसास हुआ। लगा कि मेरे हाथ-पैर बांधे जा रहे हैं। सवेरे होश आये। मेरे साथ आये हुए साथियों को भी बांधकर रखा गया था। सरकार के लोग आये। देखा कि मैसूर प्रांत के हैं। हमें यहां बुला लाये।

इस प्रकार अमासे ने अपनी कहानी बताई। गुप्तचर ने इसे गुप्तरूप से जेल के दारोगा को सुनाया।

16

अमासे के अपनी कहानी सुनाने के तीन दिन बाद मैसूर से अधिकारी आये। नगर के आमिल, किल्लेदार और तालुक के अन्य अधिकारियों के घर पर छापा मारा गया। चारों ओर खबर फैली कि उनके घरों से अनेक आभूषण जब्त किये गये हैं और उन अधिकारियों को बरखास्त करके मैसूर ले जाया गया। ऐसा क्यों किया, किसी को पता नहीं। तब मारमण की पत्नी ने अड़ोस-पड़ोस में इस तरह विलाप किया, "हाय-हाय, इस तरह का व्यवहार भी किसी ने देखा है? मेरे पति ताल्लुक के राजा हैं, उनकी कैद? कैसी अराजकता फैल गई है? उनके अधिकार से बढ़कर किसका अधिकार हो सकता है? लोग देते हैं, तो ये लेते हैं। एक लाख लिया, दो लाख कमाया इस तरह खबर फैल गई है। मैं पूछती हूं, इसमें बुरा क्या है? ऐसे अधिकारियों की यह बेइज्जती? घर की सफाई करके सब कुछ बटोर ले गये हैं। मेरे मालिक तो एक पैसा भी नहीं छूते थे। इस अनाथ देश में आकर ऐसा हुआ। छोटी-मोटी रकम को हम थोड़े ही हाथ लगाते थे? ऐसे प्रभु फिर इस कस्बे की किस्मत में कहां हो? मेरे घरवाले भी मेरी बात कहां मानते थे? रिश्वत के लिए हाथ फैलाने से कभी-कभी मैं ज़रूर मना करती थी, पर वे कब माननेवाले थे? मैं भी आमिल की पत्नी हूं, वे भाड़ में जायें। मेरी भी इज्जत है कि नहीं? ऐसे पति के जीने का क्या फायदा? चल बसे तो सिर मुंडाकर, कालिख पोतकर निश्चिंत रह जाऊं। अब ऐसा भी नहीं कर सकती, इनकी वजह से मैं कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रही। क्या करें?"

उधर गोली, बारूद, तलवार, बरछी से सुसज्जित घुड़सवार सैनिक और पैदल सिपाही मैसूर से चामराजनगर की ओर रवाना हुए। आम जनता को कारण का पता न था। तोप्पूर घाटी, गेज्जलहट्टी घाटी से होते हुए घाटी से मैदानी प्रदेश की ओर जानेवाले राहगीरों को लूटकर उन्हें लुटेरे मार डालते थे। यात्रियों की सुरक्षा के लिए इन मार्गों में गोली भरी बंदूक से लैस घुड़सवार सैनिक और पैदल सिपाहियों के पहरे की व्यवस्था थी। लोगों ने समझा कि इसी सिलसिले में घुड़सवार और सिपाही नगर में आये हैं। और किसी भी तरह की अफवाह सुनने में नहीं आती थी। घाटी के नीचे विजय यात्रा के लिए गये हुए लोगों में से एक भी संजवाडी नहीं लौटा। पर ग्रामीण निश्चिंत थे, उन्हें विश्वास था कि सब लौटेंगे और सब यथावत चलेगा।

तब एक करिश्मा देखने को मिला। सदाशिव दीक्षित गांव लौटे। ओसारे में लेटी सीतम्मा की स्थिति में कोई परिवर्तन न था। नास के लोभ से किट्टा जोइस भगवती मंदिर

की मंडली में जा बैठता और गप्पें मारता था। यों ही बतियाते वक्त अप्पाजी ने पूछा, "कहो किट्टप्पा, दीक्षित जी मैसूर से लौटे न? वहां कोई मिले? कुछ चिकित्सा कराई कि नहीं?" नास का रेंट ऊपरी ओंठ-पर बहाते हुए, उसे पोंछते हुए किट्टा जोइस ने कहा, "मेरे जीजा जी मैसूर होकर लौटे हैं। तीन-चार दिनों में बहुत बड़े मंत्रवादी आनेवाले हैं। वह एक ही दिन में किसी भी रोग, भीति, शंका, दैवी और मानवी प्रकोपों का इलाज कर सकता है। तुमसे कुछ नहीं बना तो हम क्या करें? किसी को बुलाना और कुछ करवाना था न?" इसे सुनते ही अप्पाजी के मन में खलबली मच गई। बड़े दरबार से आनेवाले मांत्रिक बड़े ही होंगे। उनके आने पर वह कुछ करेगा ही? अप्पाजी भयभीत हो गया। उसी दिन दोपहर सीतम्मा की स्थिति में परिवर्तन आया। क्षण-क्षण दम फूलने लगा, मुंह से झाग निकलने लगा। वह जोर से सांस लेने लगी। घर में सब लोग डर गये। तब तिम्मम्मा बोली, "अरे, इतने दिन चुपचाप पड़ी थी। अब क्या हो गया इसे? ससुर जी बहू पर वात्सल्य बरसाते हैं न। ऐसा भी करे तो देखें क्या सेवा होगी, यह सोचकर वह नया खेल खेल रही है। खोज-ढूंढ कर लाये हैं गोरी बहू! मेरे जैसी काली कलूटी थोड़े ही है वह?" पार्वतम्मा ने प्रतिरोध किया, "तिम्मू! लड़की दम तोड़ रही है। न जाने अब कितने पल जियेगी? अब भी उस पर द्वेष क्यों करती हो?" वृद्धा की अवहेलना करते हुए तिम्मम्मा बोली, "आप एक कोने में पड़ी रहिए। मेरी बात में टांग अड़ाने की जरूरत नहीं। सब कुछ हाथ लगा न? और क्या चाहिए आपको? मेरे बाप का घर लूट लिया न? अब मुझ पर ही ताना मारती हो?" वह मनमाना बकने लगी। यह ताड़कर कि सीतम्मा की जान बचने की कोई आशा नहीं है, उस दिन तीसरा पहर उसे बाहर ओसारे में ले गये। घबराहट के कारण कोई खा न सके। आगे न जाने क्या हो, यह सोचकर शीघ्र खाने के लिए सब निकले। सदाशिव दीक्षित नहा रहा था। पार्वतम्मा पुत्र को पानी से लोटा भर-भर के दे रही थी। वह बोली, "बेटा! तिम्मू की अवहेलना असह्य हो उठी है। हम इस गांव में क्यों आये, मानो दूसरों के अनुग्रह पर जी रहे हों। मनमाना बकती है। उससे लड़-झगड़कर मैं थक गई हूं। मैसूर में हम भीख मांगते थे? यहां आने के बाद इसके बाप की संपत्ति लूटकर हम कहां ले गये हैं? कुछ भी हो, परायों के घर में रहना ठीक नहीं। यहां आना उचित न था। हम ग्रामीण जीवन के आदी नहीं हैं। मैंने इसे पहले से महसूस किया है। हीरे जैसी लड़की लाये, उसे अब खोने की नौबत आई है। वह अब एकाध घड़ी की मेहमान है। ऐसी स्थिति में भी इस तरह उसे सताना क्या अच्छा है? इस रोग की दवा नहीं। ऐसी बात तो कभी पहले सुनी न थी। आगे कभी सुनने को न मिले। यह इसी तरह जली कटी सुनाये तो लोग कहेंगे कि इसी ने कुछ किया कराया है। भगवान जाने कि मानव के मन में क्या रहता है। हम अपने मन को स्वच्छ रखें, तो काफी है। कुछ भी हो, मैं इस गांव में नहीं रहना चाहती। हम अपने गांव चलें। नहीं तो मुझे भेज दो। मैं पशुपति के घर में रहूंगी। छोटा भाई ठहरा, एक जून नहीं खिलायेगा? मरने से पहले कुछ दिन ही सही, अपना खायें-पियें। चलो, हम मैसूर चलें।" वह आंसू बहाने लगी। सदाशिव दीक्षित ने माता को आश्वस्त किया,

"मां। मैं सब कुछ जानता हूं। अब बोलने से क्या फायदा? तुमने जो कुछ कहा उससे मैं अवगत हूं। तुम बोलती हो, मैं चुपचाप सहता जा रहा हूं। मैं भी यह गांव छोड़कर चला जाना चाहता हूं। वह समय भी आयेगा। तब तक हमें सब कुछ सहना पड़ता है।" सबने शीघ्र नहाया-धोया और खाने का व्यर्थ प्रयास भी हो चुका। जिस किसी तरह भोजन करके आकर देखते हैं कि सीतम्मा की स्थिति नाजुक है। घर भर के सब आये, देखा। तब तिम्मम्मा ने अपनी पुत्री को पुकारा, "बेटी साती! वहां मत जाना। डर जाओगी। मेरे पास आ जाना।"

पार्वतम्मा ने सीता के मुंह में पानी डाला, पानी मुंह के कोने से निकल आया। हठात हाथ-पैर ठंडे पड़ गये। नाड़ी स्तब्ध हो गई थी। जोर से उखड़ती हुई दम की आवाज आई। आवाज थम गई। रुद्र नाड़ी देखी गई। वह भी रुक गई। सब समाप्त हो गया। घरवाले सब जोर से रो पड़े। सीतम्मा का बेटा कृष्णस्वामी भय के मारे रोने लगा। मां के पास बैठकर मां के होंठ खोलता, छाती पर गिरता, पल्लू सरकाता, साड़ी खींचता और रोता। इसे देखकर सब का दुख और बढ़ गया। इस मातम में पार्वतम्मा को कुछ नहीं चाहिए था। वेंकम्मा बड़ी बूढ़ी थी। उसे सहारा देकर उठाना बिठाना पड़ता था। ऐसी स्थिति थी उसकी। तिम्मम्मा लाश के निकट फटकी तक नहीं। बच्चे का रोना सदाशिव दीक्षित से सहा नहीं गया। उसने बच्चे को उठाया। चार-छः महीने से अन्न-जल ग्रहण नहीं करने पर भी सीतम्मा का मुंह विकृत नहीं हुआ था। शरीर सिकुड़ा नहीं था। हर कोई यही कहता, "घबराइए नहीं! मुँह बिगड़ा नहीं, वह जीवित है। शायद मूर्छित है।" साती ने कहा, "मां! भाभी मरी नहीं। सो रही है।" सीता का मुंह इतना प्राणवान था। सारा गांव उमड़ पड़ा। आस-पास के गांववाले भी जमा हो गये।

तब दीक्षित ने पुरोहित, वाहक आदि को बुला भेजा। अपर कर्म की तैयारी हुई। दीक्षित ने कहा, "रात को त्रिपादि नक्षत्र है। शवयात्रा अभी होनी चाहिए। आज पूर्णिमा है, रात भर प्रकाश रहेगा। वैशाख मास है, वर्षा की संभावना नहीं है। शव को अभी ले चलते हैं। टिकठी तैयार हुई। शव को उस पर लिटाया गया। सुहागिन होने के नाते मुंह को छोड़कर सारे शरीर को नये वस्त्र से ढंका गया। हल्दी लगाई गई। कुंकुम लगाया गया। फूल पहनाये गये ' वाहक शव को अरथी पर रस्सी से बांधने लगे। पार्वतम्मा शव के पास आकर बैठ गई। विलाप करते हुए रोने लगी, "हाय सीता! तुम्हें मैं श्मशान कैसे भेजूं, पशुपति को क्या उत्तर दूं। तुम्हारे मां-बाप को कैसे समझाऊं? किस विचित्र रोग ने तुम्हें घेर लिया, न सुना था, न देखा था। घर में हम दो बूढ़े जीव थे। यमराज को हमें छोड़कर तुम्हें ही ले जाना था क्या?" ध र्मराज की आंखें नहीं हैं? बच्चे को कैसे सम्हालें? उसे क्या समझायें? भगवान! ऐसा दिन भी दिखाना था?" तब तक तिम्मम्मा चुपचाप थी। वह आई और शव पर एक बार चावल फेंका। पर उसे अवर्णनीय दुख ने घेर लिया। वह विलाप करने लगी, "हाय सीता! चली जाओगी? ऐसी बहू मैं फिर कहां पाऊंगी? सात जन्म लेने पर भी नहीं मिलेगी। लगता है कि अभी सोई हो। मेरी गाली-गलौज से तंग आकर सो गई क्या? मैं लाख सुनाती थी, पर तुमने

कभी जवाब में कुछ नहीं कहा। अब मुंह खोलो, कुछ तो बोलो। कोई बात तो कहो। मैंने तुम्हें गालियों से बहुत तंग किया था, मुझे क्षमा करना। हंसी-खुशी तुम बोलती थी तो कितना अच्छा लगता था। सीतम्मा! मैं अंदर ही अंदर झूम उठती थी। नाम तुम्हारा अन्वर्थ था। हर कोई प्रशंसा करते थे, "तुम्हारा परिवार सुखी है। तुम्हारी बहू लाजवाब है।" बच्चा रो रहा है, उसे मैं कैसे समझाऊं? बच्चे को अनाथ बनाकर चली जाओगी? बेटी, तुम्हारी जिन्दगी जिसने भी बिगाड़ी हो, उसके हाथ ऐंठ जायें। उसका घर बरबाद हो जाये। हाय भगवान! तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए हर देवी-देवता की मनौती की थी। भगवती कोल्लापुरम्मा के मंदिर में हर सप्ताह गुड़ मिले सत्तू की आरती ढोती थी। हमारा हितकारक कोई भगवान नहीं रहा क्या? हाय सीता! सीतम्मा! आह विधि! हमने क्या पाप किया है? पापी यमराज! मेरी बहू के बिना तुम्हारी नगरी क्या सूनी रही जाती थी? इस चंदा जैसे मुखड़े के बिना तुम्हारे नगर में अंधेरा छा जाता था क्या? हे बहू! किस रोग ने तुम्हें घेर लिया? न सुना था, न देखा था। बच्चा कृष्णस्वामी तुम्हारा रुदन मैं कैसे सहूंगी, कैसे सुनूंगी? मैं तुमसे एक दिन भी सीधे मुंह बोली नहीं। अब मैं तुमसे प्यार से बोलूंगी। मैं हाथ जोड़ती हूं। मेरे अपराधों को क्षमा करके उठो, सीता! हाय सीता, सीतम्मा!" तिम्मम्मा गा-गाकर रोने लगी। शव पर लोटकर छाती पीटती हुई, हाय-हाय मचाती हुई शव को उठाने नहीं दे रही थी। उसका प्रलाप देख-सुन कर एकत्र लोग जोर-जोर से रोने लगे। शव को उठाकर वाहक चल पड़े। मार्ग में अर्थी पर कुंकुम, हल्दी और फूल बरसाया गया। लोग भी विलाप करने लगे कि हमारे गांव की लक्ष्मी चली गई।

श्मशान गांव के नजदीक था। नदी किनारे दो-चार पत्थर फेंक दूरी पर ही था। शव को वहां ले गये। सदाशिव दीक्षित ही आग लेकर चले। पहले से चिता तैयार थी। जंगल बगल में था, लकड़ी की कमी न थी। बेटे कृष्णस्वामी की ओर से सदाशिव दीक्षित ने ही मंत्राग्नि जलाई। कफन को निकालने से पहले पुरोहित ने मंत्रोच्चार किया। वाहक लाश के शरीर पर से साड़ी निकालने लगे, तो बिलख-बिलख कर रोते हुए दीक्षित ने उन्हें मना किया, "हमारी सीतम्मा बहुत स्वाभिमानी थी। साड़ी मत उतारना। यदि कर्मलोप हुआ, तो प्रायश्चित कर देंगे। साड़ी लाश पर ही बनी रही। अग्निप्रवेश हुआ। लकड़ी गीली थी, जलने में देर हुई। कुछ समय तक सब रुके रहे। आग लगने में अब देर नहीं, सोचकर सब चले गये। तब रात की दस घड़ी का समय था।

कोयमत्तूर की ओर जानेवाला मार्ग नदी किनारे श्मशान की बगल से गुजरता था। घाटी में उतरकर जहां-तहां ठहर कर पिछले ग्राम में दोपहर बिताकर रात की शीतलता में चलनेवाले दो ब्राह्मण शुचिता की थैलियों को कंधे पर झुलाकर चांदनी रात में बातचीत करते हुए उस रास्ते से आये। उनमें से एक आंध्र-प्रदेश का था, नाम था आनंद भटजी। दूसरा कर्नाटक का था, श्रीरंगपट्टण का निवासी, नाम था गिरियण्णा। ये दोनों बहुत दिनों से मित्र

थे। वे पैदल चले आ रहे थे। दूर से ही आग का प्रकाश दिखाई पड़ा। वे और निकट आये। भटजी आग को ही ध्यान से देख रहे थे। कुछ समय तक चुप रहे, गिरियण्णा के प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया।

भटजी : गिरियण्णा, वह आग देखी?

गिरियण्णा : हां, देखी तो सही। जंगल में कोयला बनाने के लिए आग लगाई गई होगी। या चिता जलाई है। दोनों में से एक है।

भटजी : कोयले की आग नहीं, चिताग्नि है। निकट ही कोई गांव होगा, शायद संजवाडी। दूरी पर रोशनी दिखाई देती है।

गिरियण्णा : तुम्हारा कहना ठीक लगता है। चिताग्नि ही है। अभी-अभी जलाकर चले गये हैं।

भटजी : यह लाश नहीं है। मनुष्य देह है अवश्य, पर मरी नहीं है। प्राण अभी बचे हैं, फिर भी आग जलाकर चले गये हैं।

गिरियण्णा : क्या बात है? आग लग गई है। फिर प्राण कहां से आये?

भटजी : चाहे तो आजमा लो। तुम्हें दिखाता हूं। इस शरीर में अभी प्राण शेष हैं।

गिरियण्णा : यह कैसे कहते हो कि अभी प्राण हैं?

भटजी : चुप हो जा और ध्यान से सुन। उस शरीर की पुकार सुनाई पड़ रही है।

गिरियण्णा : हां, थोड़े समय से धीमी आवाज तो सुनाई पड़ रही है। वह हवा की ध्वनि है या लाश की?

भटजी : अरे, लाश में आवाज कैसे? यह उस शरीर से निकल रही है।

गिरियण्णा : लाश जल रही है। उससे आवाज निकलने की बात गले नहीं उतरती।

भटजी : मैं तुम्हें दिखाऊंगा, तुम धीरज रखकर बैठ सकोगे? किसी नीच ने इस जीव को धोखा दिया है, बहुत बड़ा धोखा। कोई बात नहीं, तुम डरो मत।

गिरियण्णा : ऐसा ही करूंगा।

इस तरह बातचीत करते हुए दोनों गांव से कुछ दूरी पर खड़े हो गए। भटजी ने अपनी शुचिता की थैली को गिरियण्णा के हाथ में सौंपकर नदी में स्नान किया, स्वच्छ धोती पहनी। विभूति और कुंकुम धारण किया। जोर से मंत्रोच्चारण करते हुए खड़ा रहा। फिर आग की ओर मुंह करके बैठ गया। दोनों ओर से चांदी से मढ़ी हाथ भर लंबी काली छड़ी लेकर पानी टपक रही अपनी चोटी को जमीन पर पटकते हुए, बीच-बीच में छड़ी से भी जमीन पर मारते हुए अनेक देवी-देवताओं के नाम जपते हुए, हां, हीं, हूं, पटुस्वाहाः कहकर चिल्लाया, "तैंतीस करोड़ देवताओं को बांधूंगा। भूत, बेताल, ब्रह्मराक्षस, शाकिनी, डाकिनी, प्रेत पिशाचों को बांधूंगा। दुष्टों के हाथ बांधूंगा, नीचों के मन को स्तंभित करूंगा, ॐ पटुस्वाहा ॐ पटुस्वाहा ॐ पटुस्वाहा।" इस तरह जोर से उच्चारण करते हुए चार पत्थर और मुट्ठी भर रेत को

मंत्रित कर गिरियण्णा से कहा, "इन पत्थरों को लो। इस रेत को लो। धीरज से बैठो। चारों ओर एक-एक पत्थर फेंको। जिस-जिस दिशा से तुम्हें भय होता है उस दिशा में एक चुटकी रेत फेंकते जाओ।" फिर उस महान मांत्रिक ने नदी पहुंचकर स्नान किया। जोर से मंत्र का उच्चारण करते हुए अंजुली में पानी लिए आग की परिक्रमा की। चारों ओर पानी डालकर अपनी चोटी का पानी आग पर छिड़कता, फिर से नहाकर आता और चोटी का पानी चिता पर छिड़कता। इस तरह तीन बार किया। छड़ी से जमीन पर एक चक्र रचकर, उसके खानों में बीजाक्षर भरे। अपनी छड़ी से उस पर मारते हुए मंत्रोच्चारण करने लगा।

तब एक विस्मयकारी घटना घटी। उसका वर्णन कैसे करूं? इस संसार के सारे रहस्यों के बारे में हम नहीं जानते। सर्वज्ञ सर्वेश्वर ही सबको जानता है। आग से निकली आवाज थोड़े ही समय में चीत्कार बन गई। भय के मारे गिरियण्णा विकृत स्वर में चीख उठा। भटजी ने अपनी छड़ी से उसे तीन बार स्पर्श किया, तो गिरियण्णा चुपचाप बैठ गया। आनंद भटजी ने फिर से स्नान किया; उसकी चोटी से जल टपक रहा था। उसने तीन बार अंजली भर पानी आग पर छिड़का, किसी मंत्र का पठन किया, फिर अपने मूलस्थान में जाकर वीरासन लगाकर बैठ गया। उसका मुंह चिता की ओर था। बादलों से चंद्रमा के ढंक जाने से प्रकाश मंद पड़ा। चिता हिल उठी। उस पर हाथ-पैर के हिलने का आभास हुआ। एक मानव शरीर के उठने की झलक मिली। फिर एक बार विकृत स्वर में चीखते हुए गिरियण्णा थरथर कांपते हुए खड़ा हो गया। सब को भयभीत करने वाली स्थिति थी। मध्य रात्रि थी; श्मशान; ऊपर महानिशि, ऊपर बादल की काली छाया; पिशाच को जगाकर नचानेवाला मांत्रिक; चारों ओर राख के ढेर; हड्डियों की राशियां। लाशों पर मुंह मारनेवाले कुत्ते और सियार; निर्जन प्रदेश, सड़ रही लाशों की बदबू। इसी बीच चिता पर से उठकर बोलने वाली लाश। कैसा भंयकर दृश्य! और डरावना क्या हो सकता है? अब लाश उठ खड़ी हुई; आकर बोली, "भाई! स्त्री हूं, कपड़े देना।" अब गिरियण्णा के पंचप्राण दहल उठे। भटजी उठ खड़ा हुआ और उसने लाश की ओर अपनी धोती फेंकी। विभूति को मंत्रित करके गिरियण्णा पर छिड़ककर उसे खामोश मूर्तिवत् बिठा दिया। भटजी जोर से गरजते हुए मंत्र जप रहा था। हाथ से इशारा किया। वह स्त्री नदी में स्नान करने के बाद आकर सामने खड़ी हो गई। उस महान मांत्रिक ने जीव की चोटी से एड़ी तक अपनी छड़ी उतारी। उसे बिठाया, चारों ओर लकीर खींचकर कुछ अक्षर लिखे। अपनी छोटी डिबिया से एक चुटकी कुंकुम उस पर छिड़ककर छड़ी हाथ में लिये विशेष मंत्रों का उच्चारण करने लगा। उस समय गांव की ओर से जोर का शोर सुनाई पड़ा। एक व्यक्ति हाय-हाय मचाते हुए दौड़ता हुआ आ रहा था। वह ठोकर खाकर गिरता, फिर उठता पग-पग पर प्रणाम करता और पुकारता, "माता! भारी जलन है। मां! जलकर भस्म हो रहा हूं। क्षमा करो, क्षमा करो।" मांत्रिक अपने सामने के चक्र पर छड़ी से बार-बार जोर से मारता गया। इसके मारने की गति के साथ रोते-धोते आते व्यक्ति का

आर्तनाद भी बढ़ता गया। बहुत नजदीक आने पर पता चला कि वह व्यक्ति एक पुरुष है। आकर वह भटजी को बार-बार प्रणाम करता, हाथ जोड़ता और जोर से क्रंदन करता हुआ खड़ा हो गया। बड़ी निर्दयता से भटजी ने कहा, "गाड़ी हुई चीजें ले आ।" तुरंत वह आदमी दौड़ कर गया और सती की जुड़वीं समाधि के पास सीतम्मा के आने-जाने की राह में गाड़ी गयी बालिश्त भर ऊंची काठ की गुड़िया ले आया और उसे भटजी के सामने रख दिया। वह लकड़ी से बनी गुड्डी थी। उसके सिर, हाथ, पैर और शरीर पर कीलें ठोंकी गई थीं। भटजी ने गुड्डी को मंत्रित किया, उस पर पानी छिड़का और गरजा, "इसे आग में झोंककर जला।" आदमी ने गुड्डी को आग में झोंक दिया। वह जल गई। भटजी ने कहा, "माता! बताओ कि यह आदमी कौन है।" आग के प्रकाश में उसे देखकर सीतम्मा ने कहा, "महाराज! यह हमारे गांव के माता-मंदिर का पुजारी है।" मांत्रिक ने अपनी छड़ी से पुजारी के दोनों गाल छुए। उस नीच के पेट में आग लग गई। उसने खून की कै की। खून के साथ ही उस आदमी के मुंह के सारे दांत गिर गये। फिर से भटजी ने छड़ी से उस आदमी के सिर पर एक बार मारा और फटकारा, "तम्हारे दांत मैंने तोड़ डाले हैं। ऐसा द्रोह तुम और किसी से नहीं कर सकते। तुम परम नीच हो। इस महान पतिव्रता को तुमने सताया जिसका फल तुम भोगोगे। अब निकल जा यहां से।" उस आदमी के मुंह से खून बह रहा था। "सत्यनाश हो उपाद्रि का! भगवान! उसकी सलाह मानने का यह नतीजा है, "कहते हुए चीखते चिल्लाते हुए वह आदमी अपने घर चला। इस तरह, आग में जलती सीता फिर से जी उठी।

रात की पच्चीस घड़ी समाप्त हो चुकी थी। भटजी ने फिर स्नान किया और स्वच्छ कपड़े पहने। सीतम्मा से उसकी कहानी संक्षेप में सुनी। फिर सीतम्मा और गिरियण्णा को साथ लेकर गांव में प्रवेश किया। जोइस के घर के दरवाजे पर आवाज दी, "दरवाजा खोलिए।" घर में एक-दो जने बैठे-बैठे ही सो गये थे। सदाशिव दीक्षित, तिम्मम्मा और महादेव सीतम्मा की बात करते हुए रोते हुए अभी बैठे थे। एक दिया टिमटिमा रहा था। इस कुसमय में आवाज लगाने वालों की ध्वनि पर उन्होंने ध्यान दिया। 'मैसूर से कोई आये होंगे' सोचकर महादेव ने दरवाजा खोला। गिरियण्णा और सीतम्मा के साथ भटजी अंदर आये और ओसारे में बैठ गये। सफेद धोती पहने सीतम्मा को किसी ने नहीं पहचाना। घरवाले बिना खानपान के, बिना नींद के शोकसागर में डूबे हुए थे। उन्हें किसी से मिलने की इच्छा न थी। एक कोने में दिप टिमटिमा रहा था। सीतम्मा एक अंधेरे कोने में जा खड़ी हुई। भ्रमवश सदाशिव दीक्षित ने समझा कि उनमें से कोई पशुपति सांबशास्त्री हैं।

दीक्षित : कौन? मामा जी?

भटजी : महाराज। हम कोयमत्तूर प्रदेश से आये हैं। दिन में धूप थी, तो रात भर चल कर आये हैं। थके हैं। गांव में और कहीं ठहरने की जगह नहीं मिली। जहां कहीं पूछा, तो सबने आपके यहां जाने के लिए कहा। आपकी ख्याति सुनकर यहां पहुंच गये। कल शाम तक ठहर कर

सुस्तायेंगे, फिर चले जायेंगे।

दीक्षित : महाराज! आप और किसी के यहां चले जाइये,। अंधकार में दिखाई नहीं देता था, तो समझा मैसूर से अपने बंधुजन आये हैं। यदि जानते कि आप मैसूर के नहीं हैं तो दरवाजा ही न खोलते। हमें अशौच है। आप दूसरे ठिकाने पर जाइये।

भटजी : आपको अशौच कैसे?

दीक्षित : हमें मृताशौच है।

भटजी : कारण जान सकता हूं?

दीक्षित : मेरी बहू चल बसी, तो श्मशान ले गये। अंत्येष्टि करके लौटे अभी एक प्रहर हुआ है।

भटजी : यह क्या कह रहे हैं आप? लगता नहीं कि आपकी बहू चल बसी है।

दीक्षित : अग्निसंस्कार करके मैं लौटा हूं। आप इसके बारे में क्या जानें?

भटजी : आप ऐसा कह रहे हैं! लगता नहीं कि आपकी बहू अब नहीं है। मैं कुछ ज्योतिष जानता हूं।

दीक्षित : प्रत्यक्ष घटना के लिए ज्योतिष की क्या आवश्यकता है? घर भर के लोग जब दुख से दबे जा रहे हैं, तो आपसे मैं व्यर्थ का विवाद नहीं करना चाहता। अशौच के इस घर में आप लोगों का ठहरना उचित न होगा। कृपया दूसरे किसी घर में जायें। या मंदिर का ओसारा अच्छा है, वहां जाकर सो जायें।

भटजी : दुख की वेला में आप लोगों को कष्ट देना उचित नहीं। अनजाने में आ पहुंचे। सवेरा होते ही चले जायेंगे। इसके लिए अनुमति दीजिये। इस असमय में मैं कहां जाऊं? साथ बहन है, इसलिए यहां चले आये।

सदाशिव : रास्ते पर दालान खुलता है तब तक वहां सोइये।

उसी के अनुसार दालान में भटजी और गिरियण्णा बैठ गये। सीतम्मा एक कोने में बैठी। सवेरा होने को था। भटजी अंदर जाकर बोले, "दीक्षित जी! सवेरा हो रहा है। हमें चलना है। रास्ते में आग लगने से बहन की साड़ी जल गई। उसने हमारी धोती पहन रखी है। बाहर निकलने में शरमाती है। अपनी बहू की एक पुरानी साड़ी दिला दें, तो बड़ी कृपा होगी। आपका एहसान नहीं भूलेंगे। सुना है कि आप बड़े धर्मात्मा हैं। इसलिए यहां आये हैं। इज्जत बचाने का पुण्य मिलेगा आप को। दान के लिए यह सुसमय है और हम सुपात्र हैं।" दीक्षित ने पार्वतम्मा से कहा, "मां! उस लड़की की पुरानी साड़ी और साथ में एक चोली दे देना।" उसी प्रकार वृद्धा ने कपड़े लाकर भटजी के सम्मुख रख दिये। तब तिम्मम्मा बोली, "वह रहती, इसे पहनती, तो इसे रखे रहते। जब वही नहीं तो इस साड़ी को लेकर क्या

करेंगे? उसे देख-देख कर आंसू बहाने पड़ते। इस साड़ी को पहन के जब वह निकलती, तो साक्षात आदि-लक्ष्मी ही लगती थी। हाय, हाय! वह रूप, वह गुण। फिर कहां से देखने को मिले? लीजिये, कोई पुण्यात्मा इन्हें पहने। वे सार्थक हों।" भटजी ने कहा, "माता जी! आपको क्या कमी है? क्यों दुखी होती हैं? वैसी ही बहू आयेगी।" वस्त्रों के साथ थोड़ा कुंकुम भी मांग कर ले गया और दालान में सीतम्मा को दिया। उसने वस्त्र पहने, कुंकुम धारण किया। वह दालान में रही। भटजी और गिरियण्णा अंदर जाकर बैठ गये। सदाशिव दीक्षित ने पूछा, "और क्या चाहिए, महाराज?" भटजी ने कहा, "मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता। आपने कहा कि आपकी बहू चल बसी है। आप ऐसा ही विश्वास करें। मेरी एक प्रार्थना हैं, सुनिए। घर के सभी लोगों को यहां बुलाइए। मुझे कुछ निवेदन करना है।" इसे सुनकर दीक्षित ने मन ही मन सोचा, "बार-बार इस ब्राह्मण ने यही रट लगा रखी है। ऐसा क्यों कहता है? विदित है कि बहू बिना किसी रोग से पीड़ित हुए चल बसी। मांत्रिकों से भी सलाह ली थी कि वह भीति, शंका या शाबर-प्रयोग तो नहीं है? किंतु यह ब्राह्मण घुमा फिराकर वही बात रट रहा है। इस तरह आगंतुक बनकर आनेवालों में महान आत्माएं हुआ करती हैं। देखें कि यह आदमी क्या कहता है।" परिवार के सभी सदस्यों को ओसारे में आने के लिए कहला भेजा। सब आकर खड़े हो गये।

तब घटे करिश्मे का क्या वर्णन करूं? सब को उत्सुकता थी कि वे क्यों बुलाये गये हैं। सबकी दृष्टि उस ब्राह्मण पर टिकी हुई थी। भटजी ने एकत्र लोगों की भीति को दूर करने के लिए एक मंत्र जपा। फिर जोर से पुकारा, "सीतम्मा! आजा।" तुरंत ओसारे से निकलकर सीतम्मा ने प्रवेश किया, सबको प्रणाम करके सिर झुकाकर खड़ी हो गई। सब भौंचक्के रह गये। आंखें खोलकर देखते रह गये। मुंह खोले टकटकी लगाकर सीता को ही सब देख रहे थे। सब लोग भय, आश्चर्य और आनंद से अवाक थे। तब पार्वतम्मा ने पुकारा, "सीता!" सीता ने उत्तर दिया, "जी!" घर की स्त्रियां अब दौड़ी आईं और सीता को घेर लिया। "हाय, बेटी! कहां चली गई थी? तुम्हें क्या हो गया था?" कहती हुई एक ने सीता को छाती से भर लिया। दूसरी ने सिर संभाला, और एक ने हाथ पकड़ा। दीक्षित ने कहा, "अग्निकुंड से उठी सीता देवी की भांति लौट आई हो। आओ! तुम हमारी भाग्यलक्ष्मी हो।" आश्चर्य सागर में गोता लगानेवाली तिम्मममा तुरंत सीतम्मा के पास आई। उसे बाहों में भरा, उसका सिर संवारती हुई बोली, "बेटी! हम सबको छोड़कर तुम कहां चली गई थी? बचकर जिंदा कैसे आई? यह कैसा आश्चर्य है? तुम्हें क्या हुआ था, बेटी? किसी नीच ने कौन-सी हरकत की थी? तुम्हारे भाग्य से राम-लक्ष्मण बनकर इन दोनों पुण्यात्माओं ने तुम्हारी रक्षा की न? फिर से जन्म लिया न तुमने? फिर से पति की पत्नी बनी, अपने पुत्र की मां बनी।" सबकी आंखों से आनंदाश्रु बह रह थे। दीक्षित उठा, दोनों ब्राह्मणों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और प्रार्थना की, "स्वामी! यह सब कैसे हुआ?" भटजी ने कहा, "पूर्ण वृत्तांत सीतम्मा ही कहे तो अच्छा होगा।" तब सीतम्मा ने मंदिर के पुजारी परम नीच सिद्धा के कुकृत्य का यथासाध्य

विवरण दिया। पिछवाड़े के दरवाजे पर बेहोश होकर गिरने तक की कहानी उसने सुनाई। उसके बाद गिरियण्णा ने श्मशान की घटनाओं का वर्णन किया। जादू की गुड्डी का सिद्धा द्वारा आग में जलाना, उसके दांतों का गिर पड़ना, खून कै करना और रोते-बिलखते गांव की ओर भाग निकलना, भटजी के साथ उसका यहां पहुंचना ये सारी बाते विस्तारपूर्वक गिरियण्णा ने बताईं। घर के सब लोगों ने भटजी को एक साथ साष्टांग प्रणाम किया और प्रशंसा की, "महाराज! आप हमारे लिए परमात्मा हैं।"

तत्काल अपर कर्मादि से अशुद्ध हुए घर पर चूने के पानी से छिड़काव हुआ। पुण्यार्चन संपन्न हुआ। वसिष्ठ वामदेव की भांति पधारे हुए उन दोनों ब्राह्मणों का खूब आदर-सत्कार हुआ। दीक्षित ने इन सारी घटनाओं का विवरण देते हुए पशुपति सांबशास्त्री की सेवा में पत्र भेजा। सीतम्मा के जिंदा लौटने की बात कानों-कान प्रातः होने से पूर्व ही सुगंधि की तरह गांव-गांव में फैल गई। सीतम्मा की शवयात्रा में एकत्रित भीड़ से दस गुना ज्यादा लोग इकट्ठा हो गये। सीतम्मा को देखकर आश्चर्यचकित थे। जगह छोड़ हटने का नाम ही न लेते थे। इसे देखकर लोग अघाते न थे।, विस्मित हो देखते ही रह जाते थे। जनता तांता बांधकर आती रही। सदाशिव दीक्षित ने भटजी और गिरियण्णा की खूब खातिरदारी की। उनका बड़ा सम्मान किया और अनुरोध कर उन्हें अपने घर में ही ठहराया।

सदाशिव दीक्षित के पत्र के पहुंचने से पहले ही मैसूर को खबर पहुंच गई थी। इसी बीच पशुपति सांबशास्त्री को पत्र द्वारा सीधे समाचार प्राप्त हो गया। शास्त्री और परिवार के सदस्य पत्र पढ़कर विस्मित हो गये। शास्त्री उसी समय राजमहल पहुंचा और समय साधकर अंबाविलास दीवानखाने में प्रभु के दर्शन किये। सदाशिव दीक्षित का पत्र सन्निधि में पढ़ सुनाया। महाराज साहेब और उपस्थित दरबारी आश्चर्यचकित हुए, बार-बार पत्र पढ़वाकर सुना। प्रभु ने आदेश दिया, "यह कैसा आश्चर्य है? हमारे राज्य में वह घटना घटी है जो और कहीं घटी नहीं। लाश में प्राण संचार करके जीवनदान करनेवाले महात्मा के दर्शन करना ही है। उन्हें यहां बुला लाइये।" सांबशास्त्री और उसके परिवार के लोग मैसूर से निकलकर शीघ्रातिशीघ्र संजवाडी पहुंच गये। सीतम्मा को देखकर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। सब बार-बार इस आश्चर्यजनक घटना के विवरण सुनते रहे।

उधर सेना ने कूच करके चामराजनगर में डेरा डाला था। जिस दिन सीतम्मा की अर्थी को आग लगाई गई उसी रात सेना ने कूच किया, और बीच में किसी को पता चले बिना रास्ता बदलकर संजवाडी पहुंची और गांव को घेर लिया। भगवती के मंदिर और सिद्धप्पाजी के घर के चारों ओर कड़ा पहरा था। गांव के निवासियों की नीयत अमासे के कथन से प्रकट हो चुकी थी। गांव चोरों का बिल सिद्ध हुआ। ये लोग किसी भी कृत्य से पीछे नहीं हटनेवाले लोग थे। वक्त आने पर कितने भी लोग हों, उन्हें मारकर निकल भागने की शक्ति और अभ्यास इन लोगों को था। पुजारी सिद्धप्पाजी के अनुयायी बहुत साहसी थे। भगवती का पुजारी आजकल बहुत जनप्रिय सिद्ध हुआ था। अतः भय था कि कहीं भगवती के भक्त और

सिद्धप्पाजी के अनुयायी साथ-साथ मिलकर सामना न करें। इस कारण सेना का एक बड़ा हिस्सा ही इस घेरे में सम्मिलित था। बड़े तड़के सीतम्मा ने गांव में प्रवेश किया था। सवेरा होते ही सेना ने घेरा डाला। एक काल ही सभी घरों में घुसकर स्त्री-पुरुषों को पकड़कर बांध लिया, घरों की तलाशी ली। छतों को गिराया, दीवारों को ढहा दिया, जमीन को खोद डाला। अनेक आभूषण, सोने के सिक्के और रत्नों से जड़े गहने मिले। सिद्धप्पाजी के घर भगवती के मंदिर में भी अनगिनत जेवर और धन बरामद हुआ। पोपले मुंह और रक्तसिक्त चेहरेवाला सिद्धप्पाजी बिस्तर पर पड़ा था। वहीं वह बंदी बनाया गया। उपाद्रि नारप्पा को भी कैद हुई। यह सचमुच आश्चर्यकर घटना थी। इन सबको बीच में रखकर प्राप्त जेवर और सिक्कों को थैलियों में डालकर मुहर लगाकर, गाड़ियों पर लादकर बंदूकधारी सिपाही और घुड़सवार सिपाही सबको मैसूर ले गये। इस दल से बचकर सरकार की आंखों से छिपकर बचे कुछ चोर जंगल में नदारद हो गये। एक दो दिन में गांव उजड़ गया। चारों ओर यह खबर फैल गई। अपनी गिरफ्तारी के भय से संजवाडी में आना जाना लोगों ने बंद कर दिया। भगवती के मंदिर में दिया जलाने वाले भी कोई न थे। कोल्लापुर की महालक्ष्मी गांव छोड़कर और कहीं जा बसी। नगर के अमलदार, किल्लेदार, सदरबाबू तथा अन्य मुन्शी, लिपिक, गांवों के मुखिये, शानुभोग, पुजारी, उपाध्याय और अन्य दरबारी और विजययात्रा के सारे चोर मैसूर ले जाये गये और नजरबंद रखे गये। तहकीकात के दौरान दूर-दूर के गांवों व शहरों से आये लोगों ने संजवाडी में बरामद गहनों और जेवरों को अपना-अपना कहकर पहचाना। तहकीकात कई महीनों तक चलती रही। चोरों के गिरोह में शामिल सिद्धप्पाजी जैसे लोगों को कालापानी हो गया। बाकी चोरों को दस से बीस वर्ष की कैद हुई। उपाद्रि नारप्पा को पांच वर्ष का कारावास हुआ। इन लोगों से मिले हुए सरकारी अधिकारियों में बहुतों को कैद की सजा हुई और दूसरे लोगों को छोड़ दिया गया।

इधर संजवाडी में सदाशिव दीक्षित व पशुपति सांबशास्त्री आदि ने भटजी और गिरियण्णा का खूब आदर सत्कार किया, चार-पांच दिन अपने यहां ठहराया। एक दिन बड़ा भोज दिया और कई उपहार भेंट किये। एक थाली में पचास बहदरी सोने के सिक्के सजाकर भटजी को और साधारण उपहार गिरियण्णा को अर्पित किया। सीतम्मा और महादेव ने दोनों ब्राम्हणों को साष्टांग प्रणाम किया। तब भटजी ने कहा, "महाराज! आप सत्पुरुष है। मैंने अपनी अल्पशक्ति दिखाई, तो आप यह सब प्रस्तुत करके मुझसे स्वीकार करने का अनुरोध कर रहे हैं। यह आपका बड़प्पन दिखता है, किंतु मैं कुछ भी स्वीकार नहीं करूंगा। क्योंकि स्वीकार करते ही मेरी मंत्रशक्ति नष्ट हो जायेगी। वह मेरे लिए दंडस्वरूप होगा। मुझे क्षमा करें, मैं कुछ भी नहीं लूंगा। यह हमारे गुरु जी का आदेश है। संकट के समय अपनी शक्ति का सदुपयोग करके जनता का जो उपकार मैं कर रहा हूं उसे नष्ट करके आर्तजन के कष्ट को बढ़ाने का कार्य न करें। आप इस पाप के भागी बनेंगे।" यह भटजी की स्पष्टोक्ति थी। तब पशुपति सांबशास्त्री और सदाशिव दीक्षित ने उनसे कहा, "स्वामी! लगता है कि आप

कोई महर्षि हैं। लोकोपकारार्थ आप कलियुग में पधारे हैं। पूर्व जन्म के पुण्यफल से आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके विचारों के सामने हम नतमस्तक हैं, आपसे कुछ अर्ज करने की स्थिति में हम नहीं हैं। फिर भी हमारी दो बातें आपको माननी ही होंगी। इस उपहार को हम लौटाकर नहीं ले जायेंगे। ब्राह्मण उपयोगार्थ लाये हैं अतः वह ब्राह्मण दत्त है। इसका विनियोग अब कैसे हो? आपके आदेशानुसार उसका विनियोग होगा। वसिष्ठ वामदेव के समान पधारकर प्राणदान करके हमारा उद्धार आपने किया है। हमें पीढ़ी दर पीढ़ी आपकी मूर्ति प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा करनी है। इस शरीर को आपकी सेवा में लगा लें तब भी थोड़ा ही है। आप जैसे व्यक्ति से अधिक हम क्या अर्ज करें?" तब भटजी ने कहा, "गिरियण्णा। उनका उपहार तुम स्वीकार करो। उनके घर आये हैं, उन्हें निराश करना उचित नहीं है।" भटजी की बात रखकर गिरियण्णा ने एक धोती स्वीकार की। फिर से पशुपति सांबशास्त्री ने अर्ज किया, "हमारी एक प्रार्थना तो आपने अनसुनी कर दी। आप महात्मा ठहरे, निस्पृह हैं ही। आपने जो प्राणदान दिया है उसके प्रति यदि हमें कृतज्ञता प्रदर्शित करने का आपने मौका नहीं दिया तो हम कृतघ्न ही ठहरेंगे। खैर, रहने दीजिए। आपसे और एक निवेदन है कृष्णराज प्रभु के दरबार में आपकी महिमा बहुचर्चित है। महाराजा साहेब आपके दर्शन करना चाहते हैं। आपको संग ले जाने के लिए मुझे भेजा है आप अवश्य मैसूर पधारें। प्रभु के दर्शन के बाद इच्छानुसार दिशा में यात्रा करें" भटजी ने कहा, "यह संभव नहीं। राजदरबार में मेरा क्या काम? वहां जाने पर उनकी बात माननी पड़ेगी। ऐसे अवसरों पर उपहार दिये जाते हैं। सम्मान किये जाते हैं। उसे स्वीकार न करें, तो प्रभु का अपमान होगा। स्वीकार करें तो गुरु के आदेश की अवज्ञा होती है। पल भर के लिए भी मन में यह बात उठ सकती है कि मैं इस महान स्थान के योग्य हूं। उसी क्षण मेरी शक्ति जाती रहेगी। अतः मैं मैसूर नहीं जाऊंगा।" पशुपति शास्त्री ने फिर निवेदन किया, "आपके मनोनिश्चय पर आंच आने न देने का वचन मैं देता हूं। आपको अवश्य ही मैसूर पधारना होगा।" इसके पश्चात रात को गिरियण्णा और भटजी अंदर के ओसारे में लेटे। सवेरे उठकर देखते हैं कि बाहरी दरवाजा अधखुला है। दोनों ब्राह्मण नहीं थे। लाख ढूंढने पर भी नहीं मिले। ऐसे महात्माओं को खोकर सभी दुखी हुए।

तीन दिन में संजवाडी उजड़ गई, खंडहर हो गई। जहां देखिए वहां गिरी दीवारें, टूटी छतें, खोदे गये गड्ढे, खुले द्वार, टूटे बर्तन, जहां देखा वहीं खंडहर! गांव के लोग बिखर गये। एकाध घरों में बड़े बूढ़े रह गये थे। गांव के सभी ब्राह्मण जाकर अन्य स्थानों में बस गये। सदाशिव दीक्षित और पशुपति सांबशास्त्री ने निर्णय किया कि ऐसे गांव में अब रहना ठीक नहीं है। अतः दूसरे ही दिन परिवार के लोगों को साथ लेकर, सामान गाड़ियों पर लादकर मैसूर चले गये। पंद्रह दिन में गांव निर्जन हो गया। उसमें एक भी प्राणी नहीं रहा। पशुपति सांबशास्त्री और सदाशिव दीक्षित प्रभु के सम्मुख उपस्थित हुए। सारी घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया। महाराजा साहब को बहुत दुख हुआ कि ऐसे महात्मा के दर्शन नहीं हुए। इन

बातों को सुनकर राजसभा चकित हो गई। सदाशिव दीक्षित सपरिवार मैसूर में ही बस गया। सीतम्मा और महादेव बहुत समय तक सुखी जीवन विताते रहे।

संजवाडी के चोरों की टोली नष्ट हो गई। उसके सभी सदस्य दंडित हुए। अमासे मुखबिर बन गया, उसके कारण सारा रहस्य खुल गया। इसलिए सरकार ने उसे क्षमा करके छोड़ दिया। संजवाडी के चोर जब कारागार के अंदर जा रहे थे, तब अमासे छूटकर बाहर आ रहा था। उन लोगों को देखकर वह कह उठा, ''जैसी करनी वैसी भरनी।''

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित